योगविद्या

वर्ष 14 अंक 4

अप्रैल 2025

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2025

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के प्लेट: भारत योग यात्रा, 2025

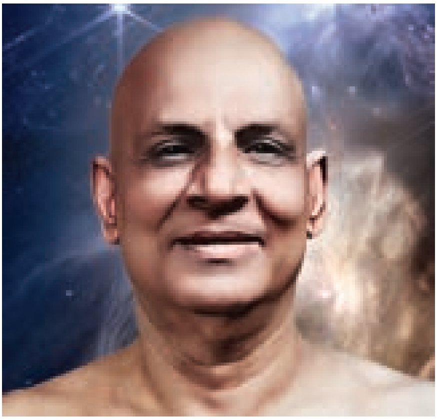

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

वैराग्य

यौवन सन्ध्या के पुष्प की भाँति मुरझा जाता है। शारीरिक बल छितराए बादल की भाँति विलीन हो जाता है। तन का सौन्दर्य शीघ्र ही मृत्यु की कुरूपता में परिवर्तित हो जाता है। इसलिए त्याग की शरण में आओ और मानव जाति की भलाई के लिए कार्य करो, धैर्य और लगन से ध्यान करो। शाश्वत आनन्द एवं अमरत्व की प्राप्ति के लिए यही सुनिश्चित मार्ग है।

विषय-वस्तुएँ आपके हृदय को तब तक मोहित करती हैं जब तक आप कामुक होते हैं। लेकिन जब आप में वैराग्य और अनासक्ति का भाव प्रकट होता है, तब इन सभी वस्तुओं का आकर्षण लुप्त हो जाता है। ये सभी रसहीन प्रतीत होने लगती हैं। इसलिए अपने अन्दर वैराग्य विकसित करो।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 14 अंक 4 अप्रैल 2025
(प्रकाशन का 63 वाँ वर्ष)

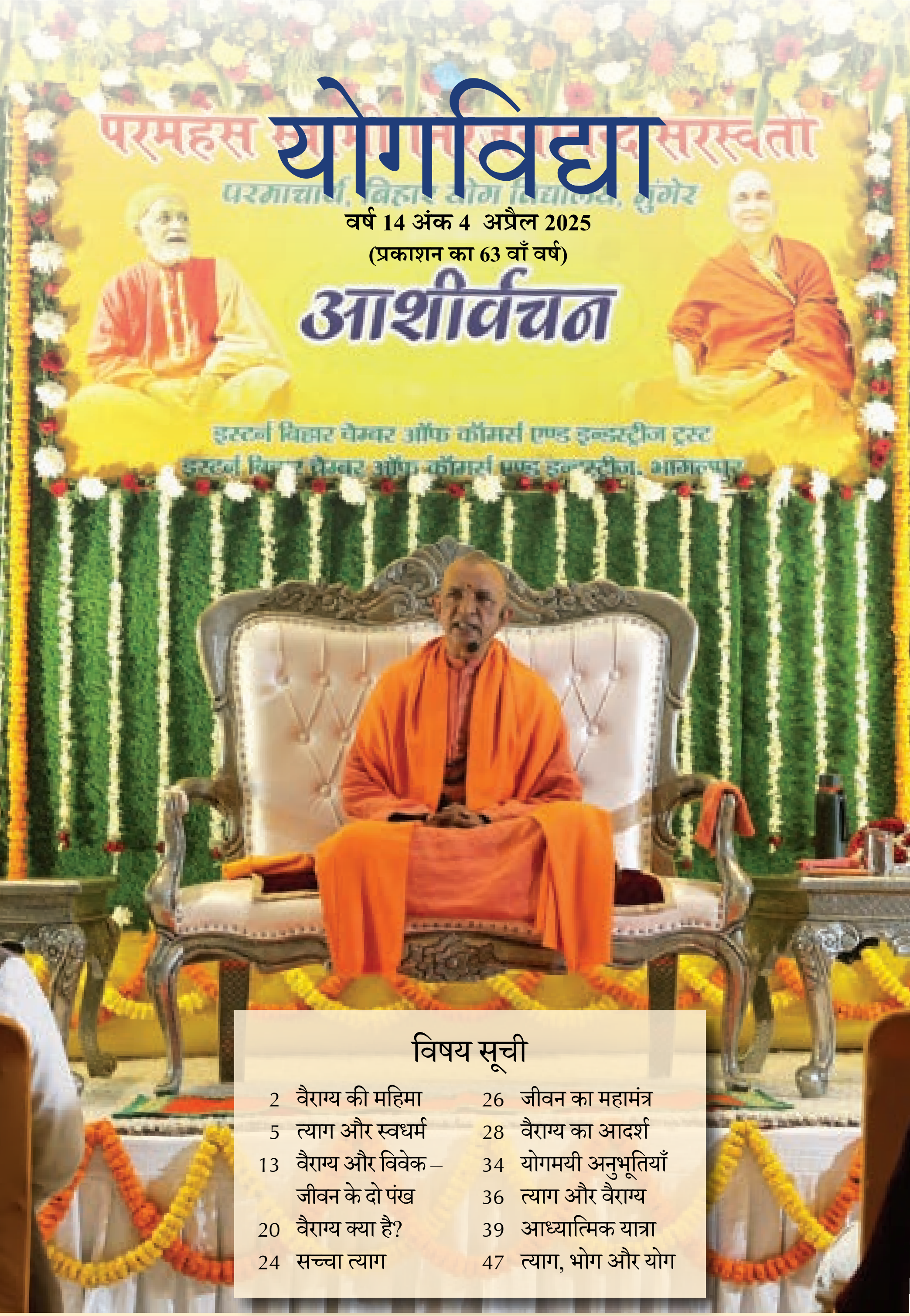

विषय सूची

2 वैराग्य की महिमा
5 त्याग और स्वधर्म
13 वैराग्य और विवेक – जीवन के दो पंख
20 वैराग्य क्या है?
24 सच्चा त्याग
26 जीवन का महामंत्र
28 वैराग्य का आदर्श
34 योगमयी अनुभूतियाँ
36 त्याग और वैराग्य
39 आध्यात्मिक यात्रा
47 त्याग, भोग और योग

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

वैराग्य की महिमा

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

यह सम्पूर्ण जगत् मेरे लिए अग्नि के गोले के समान है। यह सम्पूर्ण जगत् मुझे एक बड़ी भट्ठी के समान प्रतीत होता है, जिसमें सभी जीवित प्राणी भूने जा रहे हैं। जब आप मृत्यु के निकट होंगे, तो क्या आपके पुत्र, पुत्री, मित्र अथवा सम्बन्धी आपकी सहायता करेंगे?

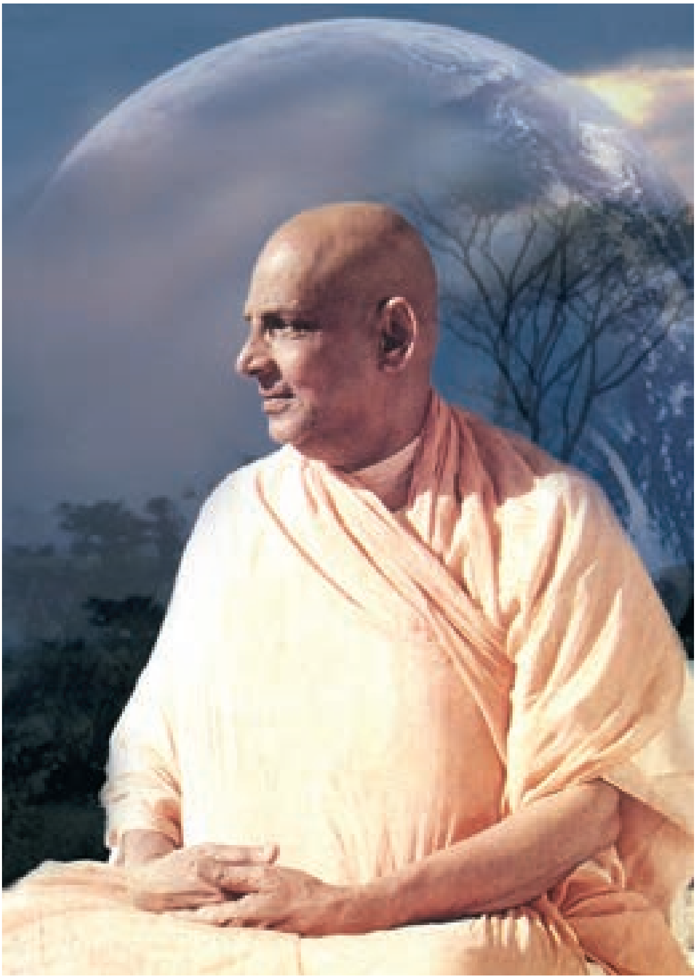

क्या आपको इस संसार में एक भी सच्चा निःस्वार्थ मित्र प्राप्त हुआ? यहाँ पर कहीं भी शुद्ध प्रेम नहीं है। लेकिन वह ईश्वर जो आपके मित्रों के मित्र, अभिभावकों के अभिभावक हैं, जो आपके हृदय में निवास करते हैं, वे आपको कभी नहीं भूलेंगे, चाहे आप उन्हें भूल जायें। उन देवों के देव की, उन ईश्वरों के ईश्वर की एकान्त में पूजा करें। वे आपको अपने प्रेम, ज्ञान, शक्ति और शान्ति का वरदान दें।

इस संसार में चूँकि प्रत्येक चीज अवास्तविक है, इसलिए प्रेम और आदर को विष की भाँति समझें। निरपेक्ष रहें। निग्रही तथा मौन रहें। अन्य लोगों के साथ घुलना-मिलना छोड़ दें। अकेले रहें और अपने हृदय में आत्मिक आनन्द का अनुभव करें। जब आप आत्मा में निवास करेंगे तब आपको किसी के साथ या सहारे की आवश्यकता नहीं होगी।

आपको सांसारिक वस्तुओं के प्रति पूर्ण वैराग्य होना चाहिए। सभी भौतिक वस्तुओं तथा इन्द्रिय-जनित आनन्दों को विष, धूल तथा तृण की भाँति जानें। मन को उनसे वापस खींच लें। ऐसा करने पर ही आपको ज्ञान प्राप्त होगा।

इस मायावी जीवन को त्याग दें। निर्भय बनें। वैराग्य में शरण लें। सभी भय द्रवीभूत हो जायेंगे। प्रभु के चरणों से जा लगें। अविभाज्य, अदृश्य, अज्ञात आत्मा में दृढ़ रहें।

पति-पत्नी, घर-सम्पत्ति, बच्चों और विषयों के प्रति अविवेकपूर्ण आसक्ति से आप अपनी वास्तविक दैवी प्रकृति के बारे में सब-कुछ भूल गये हैं। आप नास्तिक बन गये हैं। पत्नी, बच्चे तथा धन आपके ईश्वर बन गये हैं, जबकि वास्तव में वे आपके शत्रु हैं।

यदि आप प्रबल वैराग्य का विकास करें, यदि आप अपनी इन्द्रियों को वश में कर लें और इस निरर्थक संसार के सभी आनन्दों तथा सुखों को त्याग दें, क्योंकि इनके साथ दुःख, पाप, भय, प्रलोभन, कष्ट, रोग, वृद्धावस्था तथा मृत्यु मिश्रित है, तो वास्तव में आपको कोई भी चीज प्रलोभित नहीं कर सकेगी। आप सभी प्रलोभनों से रहित हो जायेंगे। आपके पास अनन्त शान्ति तथा आनन्द होगा। सांसारिक वस्तुओं के प्रति आपको कोई आकर्षण नहीं होगा। वासना तब आपके पास भी नहीं फटकेगी।

अगर आप वास्तव में ईश्वर को ही चाहते हैं तो इस संसार को निर्दयतापूर्वक ठोकर मार दें। बस! आपकी चाय-कॉफी बहुत हुई, बहुत हुआ आपका सोडा-लेमोनेड, बहुत हुए माता, पिता, पुत्र, पुत्री, भाई, बहन और सम्बन्धी। आपके

भूतकाल में अनगिनत माता, पिता, पत्नी और बच्चे हुए हैं। आप अकेले आये हैं और अकेले जायेंगे। कोई भी आपके साथ नहीं है। आपके कर्म ही मात्र आपकी रक्षा करेंगे। भगवद्-साक्षात्कार करें। सभी कष्ट समाप्त हो जायेंगे।

जो पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री एवं संसार के विषयों से अविवेकी रूप से चिपका हुआ है, उसे अपनी दैवी प्रकृति को भूल जाने के अलावा और कोई चारा नहीं है। सांसारिक व्यक्ति सोचते हैं कि वे बहुत प्रसन्न हैं क्योंकि उनके पास थोड़े बिस्किट, थोड़ा धन और स्त्री-बच्चे हैं। अरे, यदि वे अमरता का मधु एक बार चख लें, तो उन्हें जिस खुशी का अनुभव होगा, उसकी क्या सीमा होगी, कहा नहीं जा सकता।

प्रिय मित्र! जिस प्रकार भूतकाल आपके लिए अब एक सपना हो गया है, तब आप इस बात पर क्यों नहीं विश्वास करते कि वर्तमान भी निकट भविष्य में स्वप्न ही हो जायेगा।

सभी सांसारिक सुख आरम्भ में अमृत प्रतीत होते हैं, लेकिन अन्त में मारक विष बन जाते हैं। यह संसार दो दिन का मेला है और शरीर मात्र दो पल का है। यहाँ तक कि यदि आप सम्पूर्ण संसार के सम्राट् भी बन जायें तो भी आप सच्चे आनन्द और शान्ति का अनुभव नहीं कर पायेंगे।

धरती पर मनुष्य का जीवन और कुछ नहीं, प्रलोभनों तथा दुःखों का सिलसिला है। आप इस परिवर्तनशील जगत् में चारों ओर से बँधे, विभिन्न परिस्थितियों में चक्कर लगा रहे हैं, भ्रमित होकर भटक रहे हैं तथा कष्टों से प्रभावित हैं। पर जिनके भीतर सच्चा वैराग्य है, जिनकी विवेक-शक्ति प्रबल है, वे संसार और माया से शीघ्र प्रलोभित नहीं होते और दिव्य जीवन जीते हैं।

त्याग और स्वधर्म

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

संसार का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है, श्रीमद्भगवद्गीता। करोड़ों के जीवन में शान्ति, नवोदित आशा और कल्याण की दिशा दिखाने में यदि कोई ग्रन्थ सर्वाधिक सफल हुआ, तो वह है गीता। पूर्व और पश्चिम, दोनों को प्रेरणा दे रहा है और आगे भी देता रहेगा।

गीता है मानवता की बाईबिल। जैसे अन्धकार में दीपक का प्रकाश होता है, वैसे ही जीवन के नाज़ुक क्षणों में ज्ञान का प्रकाश, कर्म का मार्ग प्रशस्त करती है गीता। जो गीता को समझ गया वह सब कुछ पा गया, बस यही समझो। परन्तु गीता समझते कहाँ हैं सब? गीता की जो व्याख्या मैं यहाँ बतलाऊँगा, वह तुम्हें किसी पुस्तक में इस ढंग से नहीं मिलेगी।

गीता के मुख्य अभिनयकर्ता हैं श्रीकृष्ण और अर्जुन, संजय और धृतराष्ट्र। रचनाकार हैं महर्षि व्यासदेव। गीता में श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच जो संवाद हुआ, वह गुरु और शिष्य के रूप में हुआ, किन्तु कृष्णार्जुन संवाद ही गीता नहीं, बल्कि संजय और धृतराष्ट्र के बीच जो संवाद हुआ तथा जो संवाद व्यास ने लिखा वह भी गीता है। जितने भी संवाद हुए या हो रहे हैं, वे सब गुरु और शिष्य के संवाद के रूप में ही हैं या फिर आत्मा और जीवात्मा के संवाद के रूप में। एक गीता बाहर चल रही है और दूसरी गीता अन्दर। श्रीकृष्ण तो आत्मा के रूपक हैं और अर्जुन जीवात्मा का। यदि दिव्यदृष्टि वाला आत्मा संजय गुरु है तो अविद्या, अज्ञान से अन्धा जीवात्मा, धृतराष्ट्र उसका चेला है।

गीता का संवाद गुरु और शिष्य के बीच में और दूसरा आत्मा और जीवात्मा के रूप में है। क्या तुम्हें मालूम है ये अभिनयकर्ता कौन हैं, कहाँ हैं? तो सुनो, बतलाता हूँ। श्रीकृष्ण और अर्जुन, ये दोनों ही हमारे अंदर रहते हैं। सद्बुद्धि का नाम है, कृष्ण तथा दुर्बुद्धि, अज्ञान और मूर्खता का नाम है, अर्जुन। प्रत्येक मनुष्य में ये दो प्रकार के व्यक्तित्व रहते हैं। महान् व्यक्तित्व का नाम है कृष्ण, और निम्न व्यक्तित्व का नाम है अर्जुन।

स्वधर्म पालन

गीता में यह कथा आती है कि लड़ाई के मैदान में दोनों पक्षों की पलटनें खड़ी हैं। दोनों सेनाएँ कुरुक्षेत्र के मैदान में हैं। अर्जुन श्रीकृष्ण से कहता है कि वे उसका रथ दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा करें, ताकि उसे यह पता चले कि लड़ाई के मैदान में उससे लड़ने के लिए कौन-कौन से शत्रु एकत्र हुए हैं। जब रथ बीच में खड़ा हुआ तब अर्जुन ने चारों तरफ अपने ही भाई-बन्धु, मित्र, सम्बन्धी, गुरु आदि को देखा। उन्हें देखकर ममता ने आ घेरा और अर्जुन ने युद्ध करना अस्वीकार कर दिया।

इस पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को लड़ने का आदेश दिया तथा स्वधर्म पालन का उपदेश दिया। कर्म त्यागने का सर्वथा निषेध किया। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के सम्पूर्ण अठारह अध्यायों में अर्जुन को केवल एक बात बतलाई, और वह है – कर्म का उपदेश। निरन्तर कर्म करना और संसार में रहते हुए कर्म करना। उन्होंने गीता में अर्जुन को उसका स्वधर्म बतलाया, उसकी ड्यूटी बतलाई। यह ड्यूटी हर मनुष्य को करनी पड़ती है, कोई इससे भाग नहीं सकता। प्रकृति सबसे कर्म करा लेती है, संसार त्यागने पर भी प्रकृति स्वधर्म कराये बिना नहीं छोड़ती।

संसार में जितने प्राणी हैं, सबकी कोई-न-कोई ड्यूटी है, स्वधर्म है, जिसका पालन ही ईश्वरीय इच्छा की पूर्ति है। हवा का धर्म है चलना, जल का बहना, अग्नि का जलाना और गर्मी देना। इसी तरह स्त्री और पुरुष के धर्म भी अलग-अलग हैं। प्रकृति ने हर एक को निश्चित धर्म और कर्तव्य दिया है। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से यही कहते हैं कि कर्म का त्याग करना कदापि उचित नहीं। कर्म का त्याग तो कभी किसी से होता नहीं, चाहे वह साधु या महात्मा क्यों न हो। संन्यासी या साधु भी कर्म का त्याग नहीं कर सकता, किसी रूप में उसे भी कर्म करना ही पड़ता है। योग वाशिष्ठ की आद्योपान्त शिक्षा का भी यही सार है।

कर्म-त्याग निषेध

आज तक कोई भी कर्म का त्याग नहीं कर सका है। स्वयं भगवान् भी कर्म करने के लिए जन्म लेते हैं। भगवान् राम, कृष्ण, बुद्ध, सभी ने तो कर्म किया। कर्म-त्याग किया किसने? अगर कृष्ण ने अवतार लिया कंस को मारने के लिए, तो राम ने अवतार लिया रावण को मारने के लिए। भगवान् के जितने अवतार हुए, कर्म के उद्देश्य से ही तो हुए!

जो कर्म का त्याग करता है, उसे गीता पापी कहती है। कर्म का त्याग आखिर कर कौन सकता है? इस रहस्य को समझो। तुम किस कर्म को त्यागने की बात सोचते हो – शारीरिक कर्म या बौद्धिक कर्म? छींकना भी तो कर्म है, सोना भी कर्म है। बैठना, लिखना, बोलना, सभी कर्म हैं। त्यागना भी एक कर्म है। लोग कहते हैं कि उन्होंने संसार त्याग दिया है। इसका मतलब क्या हुआ? कर्म का त्याग कोई भी आज तक कर सका? चाहने पर भी कोई नहीं कर सकता! यदि त्याग करना चाहोगे भी तो तुम्हारी वासना तुमसे जबरदस्ती कर्म करायेगी। जब तक आकांक्षा और महत्त्वाकांक्षा है, तब तक कर्म करना पड़ेगा। कुली, साधु, नेता, गृहस्थ – सभी को कर्म करना ही पड़ता है।

एक कर्म का त्याग कर दूसरा कर्म करने को कर्म-त्याग नहीं कहा जाता। जिस तरह मैंने पुरानी जगह को छोड़कर एक अच्छा नया, मकान मोल ले लिया जहाँ अधिक सुविधा है, तो इसका अर्थ यह नहीं है कि मैंने घर का त्याग कर दिया। जगह का त्याग किया जरूर, परन्तु एक जगह छोड़कर दूसरी जगह मैंने ले ली। पुराना मकान छोड़कर नये मकान में जाने के लिए उस जगह का त्याग किया। इसी तरह एक अच्छे काम के लिए यदि मुझे बुरे काम का त्याग करना पड़े, तो उसे त्याग न कहकर महत्त्वाकांक्षा कहेंगे। जो जीवन में कुछ पाना चाहते हैं और बनना चाहते हैं, उन्हें महत्त्वाकांक्षी कहते हैं। जो अपना घर, स्त्री, धन, परिवार, बच्चों को त्याग कर उससे कोई बड़ा काम अपने हाथ में लेता है, उसे त्यागी नहीं, महत्त्वाकांक्षी कहेंगे।

गीता में कर्मयोग

गीता के कर्मयोग का दर्शन उतना सरल नहीं है, जितना लोग समझ लेते हैं। जीवन के हर क्षण में उसको कार्यान्वित करना, कर्म करते समय भी उसके अनुकूल प्रभाव को प्राप्त करना कठिन है। परन्तु फिर भी इसी रहस्य को जगत् को समझना है। और इसे समझाने की मैं पूरी चेष्टा करूँगा।

मैंने घर छोड़ा और साधु बन गया। परन्तु अब तक कोई क्षण ऐसा नहीं गया, जिसमें कर्म न हुआ हो। साधना भी एक कर्म है। राजा शिखिध्वज को रानी चुडाला के माध्यम से वशिष्ठ ने त्याग का महत्त्व और स्वरूप बतलाया। राजमहल, दास-दासी, मंत्री, दण्ड को छोड़कर मूर्ख राजा ने कुटिया, फल-फूल, मृग चर्म, कमण्डलु और वन का राज्य ग्रहण कर लिया। राजकर्म से विरत होकर आचमन, संध्या, जप, अनुष्ठान आदि को अपना लिया। फिर यह कर्म का त्याग हुआ, वस्तुओं का त्याग हुआ या कर्म का रूपान्तर और वस्तुओं का रूपान्तर? मैंने यदि घर का त्याग किया तो इसलिए कि मुझे उस कर्म से यह कर्म महान् दिखाई दिया, किन्तु मैंने कर्म का त्याग नहीं किया, बल्कि कर्म का रूप बदल लिया।

कितने ही व्यक्ति माउण्ट एवरेस्ट पर चढ़ने के लिए घर छोड़ते हैं, परन्तु इसे त्याग नहीं कहा जा सकता। त्याग उसे कहते हैं कि चाहे जो भी कर्म किया जाये, उसका मन पर असर नहीं पड़े। किये हुए कर्म के प्रभाव को मन से ग्रहण नहीं करना – यही त्याग है। ऐसा ही व्यक्ति त्यागी और संन्यासी कहा जाता है –

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥6.1॥

जिसके मन पर कर्म का असर नहीं पड़े, चाहे वह कार्य टट्टी साफ करने का हो या खाना बनाने का, वही व्यक्ति वास्तव में त्यागी कहा जायेगा। कर्म को तो कोई छोड़ नहीं सकता। एक छोटे परिवार के लिए काम करना छोड़कर, एक बड़े परिवार के लिए जब हम काम करते हैं, तो उसे 'कर्मयोग' कहा जाता है।

त्यागी और रागी

क्या त्याग की परिभाषा यही है कि मैं घर या कपड़ा छोड़ने को कहूँ और आप छोड़ दो और त्यागी का सर्टिफिकेट ले लो? घर या कपड़ा छोड़ने में देर ही कितनी लगती है? अधिक-से-अधिक दो मिनट, परन्तु इसको त्याग नहीं कहते। त्यागी उसी को कहते हैं जिसके त्याग का भी मन पर कोई असर नहीं पड़ता है। क्या आप जानते हो सबसे बड़ा त्यागी कौन है? सबसे बड़ा त्यागी कमल का पत्ता है – जो जल से पैदा हुआ, जल से जिया और जल में जिसका जीवन है, किन्तु जब तक रहा, जल से अलग रहा। उसी तरह हम संसार से पैदा हुए, संसार में रहेंगे, लेकिन संसार का असर मन पर नहीं पड़ना चाहिए।

बत्तख भी बड़ी त्यागी है। वह पानी में रहती है, परन्तु पानी से बाहर आते ही अपने को ऐसे झाड़ लेती है कि पानी की एक बूँद भी उसके शरीर पर नहीं रहती। आप छूकर देखेंगे तो वह बिल्कुल सूखी रहेगी। यह मतलब है त्याग का। एक और बड़ा त्यागी है बरसाती कोट। वह बरसात के लिए ही बनाया गया है और बरसात में ही काम आता है। वह कभी यह नहीं कहेगा कि वह बरसात में नहीं जायेगा, परन्तु पानी उससे रिसता कभी नहीं। पानी उसमें प्रवेश नहीं कर सकता। वैसे ही मनुष्य को संसार से ही सम्बन्ध रखना है, किन्तु फिर भी संसार को अपने में नहीं रख लेना है।

दूसरी ओर रागी हैं कम्बल, कपड़ा, चप्पल। कम्बल यदि पानी में पड़ेगा तो उसकी नस-नस में पानी भर जायेगा। कपड़े पर मिट्टी लगेगी तो वह मिट्टी से भर जायेगा। इसे कहते हैं, रागी। रागी पर संसार का बड़ा असर पड़ता है।

त्याग का मतलब है, सब कर्म करो, चाहे कितना ही छोटा या नीच कर्म क्यों न हो, चाहे कसाई का या मेहतर का या अन्य कोई। परन्तु वह स्वधर्म हो और मन पर उसका किसी प्रकार का असर नहीं पड़ना चाहिए।

कर्मयोग से चित्तशुद्धि

जब मैं शिवानन्द आश्रम गया तब शुरू-शुरू में मुझे बरतन माँजने पड़े। पहले मुझे बहुत बुरा लगा और सोचा कि शायद यह काम मुझे दो-चार दिन ही करना पड़ेगा। पर बाद में पता चला कि यह मुझे रोज-रोज ही करना होगा। बरतन भी बड़े-बड़े थे, छोटे नहीं। लेकिन मुझे बुरा क्यों लगा? मन पर उसका असर इसलिए पड़ा कि मेरी नजर में बर्तन माँजना नीच काम था। मैंने सात दिन काम करने के बाद बर्तन माँजना छोड़ दिया। मैनेजर मुझ पर बड़ा गुस्सा भी हुआ, पर धीरे-धीरे जब मैं अभ्यस्त हो गया तब मुझे वह काम बुरा नहीं लगता था, बल्कि कर्म से उत्पन्न आनन्द से मैं विभोर रहने लगा। मैं आपको बताऊँ, निःस्वार्थ कर्म से आनन्द का स्रोत बहता है, जिससे मन की क्लिष्टताएँ, मन की ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। इसलिए कहते हैं कि कर्म से चित्त की शुद्धि होती है। उसके बाद तो फिर मैं कोढ़ियों को भोजन कराता, उनके पैर धोता और जूठे बर्तन माँजता। सभी बड़े प्रेम से। अन्तर क्या हुआ? यही कि मन की प्रतिक्रियात्मक शक्ति समाप्त हो गयी और मन पर कोई असर नहीं पड़ने लगा। मेरा मन पक्का हो गया। जो कार्य वर्षों के ध्यान से नहीं सधता, वह कर्मयोग से सध जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण को देखो। क्या उन्होंने काम नहीं किया? राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण ने अतिथियों के पैर धोने का काम किया। इसलिए सब काम मन लगाकर ही करने चाहिए। दुनिया में कोई काम बड़ा या छोटा नहीं, कोई बुरा और अच्छा नहीं। यह केवल अध्यात्म-दर्शन नहीं, बल्कि संसार-दर्शन भी है। महान् पुरुषों ने इसी सत्य को अच्छी तरह समझ कर नाम कमाया। जॉन रस्किन ने 'अनटू दिस लास्ट' में क्या सत्य दर्शाया? मार्क्स ने वर्गहीन समाज का ख्वाब देखा, गाँधी और टॉल्स्टॉय के दर्शनों का प्राण – क्या यही विचारधारा मूल में नहीं है?

युग-युग से सत्य का प्रतिपादन होता आया है। कोई काम अपने में बड़ा और छोटा कभी नहीं होता। जिस काम को करने से मन पर असर पड़े, स्वार्थ के या बुरे विचार मन में आते हों, वही काम बुरा है। वही काम बन्धन में डालेगा। उससे प्रभु-दर्शन कभी नहीं हो सकता। न कोई कर्म ऊँचा और न नीचा, बल्कि जैसी भावना होगी वैसा ही कर्म बनेगा।

जब मैं स्कूल में पढ़ता था तब मुझे जूता साफ करना खराब लगता था। मैं कभी किसी का जूता नहीं छूता था। मैं अपना कमरा भी खुद साफ करना तौहीन समझता था। बाजार भी कभी जाने का मौका नहीं मिलता था। एक बार मैं झोला लेकर बाजार गया तो मुझे हर पल ऐसा मालूम पड़ता था जैसे सब लोग

मेरी ही ओर देख रहे हैं। पर अब ऐसा नहीं होता। मैं टट्टी भी साफ कर सकता हूँ और करता हूँ, क्योंकि मैंने जाना है कि ऐसा करने से चित्तशुद्धि होती है।

रमण महर्षि ने बारह वर्ष की अवस्था में घर त्यागा और मृत्यु अस्सी वर्ष की अवस्था में हुई थी। वे एक महान् जीवनमुक्त पुरुष थे। एक बार एक ईसाई पादरी ने आकर उनसे पूछा कि आपका भगवान् कहाँ रहता है? वे पादरी को एक झोंपड़ी के पास ले गये जिसमें एक कोढ़ी रहता था। पादरी को उसके पास ले जाकर कहा, मेरा भगवान् यही है। इस पर पादरी ने कहा कि मेरा भी भगवान् यही है। मंदिर का भगवान् सबका अलग हो सकता है, पर हर एक में जो भगवान् है, वह एक ही है। कोढ़ियों और बीमारों की सेवा करने से चित्त शुद्ध होता है। भगवान् को खुश करने का रास्ता है – पतित और गिरे हुए लोगों की सेवा करना। जिसको संसार धिक्कारे, उसकी सेवा करना ही भगवान् को खुश करना है।

अबू-बेन-आदम एक संत था। उसने एक बार स्वप्न में भगवान् के दूत के हाथ में एक सुनहरी पुस्तक देखी। दूत से उसने पूछा, 'यह कौन-सी पुस्तक है?' उसने उत्तर दिया, 'इस पुस्तक में उन लोगों के नाम लिखे जाते हैं जो स्वर्ग में जायेंगे।' अबू-बेन-आदम ने पूछा, 'क्या मेरा नाम भी उस पुस्तक में है?' भगवान् के दूत ने उत्तर दिया, 'नहीं, क्योंकि आपने प्रेम और सेवा नहीं की है।' वह बेचारा अत्यन्त निराश हुआ, वन में चला गया। वहाँ उसने एक हिरण को देखा, जो बड़ा दुःखी और कष्ट में था। उसने उससे प्रेम किया और सेवा की। दूसरी बार उसने भगवान् के दूत को उसी सुनहरी पुस्तक के साथ रात में स्वप्न में देखा। उसने फिर पूछा, 'क्या मेरा नाम इस पुस्तक में है?' भगवान् के दूत ने उत्तर दिया, 'हाँ, सबसे पहला नाम आप का है!'

जो प्राणीमात्र से प्रेम करता है, उससे भगवान् भी प्रेम करते हैं। साधु बनने में क्या है? सिर मुड़ाने और लाल-गेरू कपड़े पहनने में कुछ नहीं रखा। भगवान् राम ने भी तो शादी की, घर-गृहस्थी की, फिर भी हम उन्हें भगवान् क्यों मानते हैं? इसका अर्थ यही है कि विवाह करके भी मनुष्य भगवान् से प्रेम कर सकता है। इसमें त्याग की ही बड़ी आवश्यकता है। मन पर जरा भी प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। वैसे कोई भी छोटा काम करने में हर्ज नहीं है। चित्त शुद्ध होने से ही आशीर्वाद मिलेगा। संत भी सबको आशीर्वाद देते हैं, परन्तु उसे ग्रहण करने की शक्ति केवल त्याग से, प्रेम और सेवा से तथा स्वार्थ को मिटा देने से आती है।

वैराग्य और विवेक – जीवन के दो पंख

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हमें अपने जीवन में अनेकों विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, लेकिन जीवन में जब इस प्रकार की परिस्थितियाँ आती हैं, तब हम प्राय: भाग खड़े होते हैं, उनका सामना नहीं कर पाते। यदि जीवन में आत्म-शक्ति और संकल्प-शक्ति प्रबल रहें, तो मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं।

अपने भीतर इस शक्ति को जाग्रत करना योग के मानसिक पक्ष का उद्देश्य है। योग का एक विशाल पक्ष मनोवैज्ञानिक तथा मानसिक है। इस विशाल पक्ष को समझने के लिए हमें पहले एक छोटी-सी बात को ही जानना है कि अपने मन को सबल और स्वस्थ बनाने के लिए, उसे आरोग्य प्रदान करने के लिए, केवल सकारात्मक और संतुलित विचारों को अपने भीतर स्थान देना है। बात है तो बहुत छोटी, लेकिन इसके पीछे एक बहुत बड़ा रहस्य छिपा हुआ है।

किस प्रकार हम अपने भीतर एक संतुलित और सकारात्मक विचार को जन्म दें? आपको यह समझाने की आवश्यकता नहीं कि अगर हम किसी ओर आकृष्ट होते हैं, तो यह आकर्षण विषयों की तरफ ही रहता है। विषयों का चिन्तन करते हैं, तो इसके पीछे भी विषयों के प्रति आकर्षण है। अगर कोई कर्म करते हैं, तो वह भी विषयों के प्रति आकर्षण द्वारा प्रेरित रहता है।

यह कहना तो सरल है कि मन में सकारात्मक विचार को उत्पन्न करो, लेकिन इतना ही कह कर योग चुप नहीं रहता, वह तरीका बताता है कि किस प्रकार मानसिक स्वास्थ्य के लिए हम सकारात्मक, सृजनात्मक एवं संतुलित विचारों को जन्म दे सकते हैं। बचपन से ही हम लोगों को शिक्षा के रूप में कहा जाता है कि बच्चों! झूठ मत बोलो; चोरी मत करो; किसी की निन्दा मत करो, लेकिन फिर भी इस शिक्षा को हम लोग ग्रहण नहीं करते। आप यह नहीं कहना कि बचपन की इस शिक्षा को हम लोगों ने अपने जीवन में ग्रहण किया है, क्योंकि आपकी जीवन-पद्धति, आपके जीवन-कर्म दूसरे ही प्रकार का परिचय दे रहे हैं। इसके पीछे एक ही कारण है कि हमें तरीका नहीं बतलाया गया कि अगर झूठ नहीं बोलना है, तो सत्य कैसे बोलें? अगर चोरी नहीं करनी है, तो अहिंसा का मार्ग किस तरह अपनायें?

मैं एक छोटा-सा उदाहरण देता हूँ कि सामान्य रूप से इन सब विचारों को हम दार्शनिक विचारधारा के रूप में ही ग्रहण करते हैं, व्यावहारिक विचारधारा के रूप में नहीं। अगर हमें कहा जाए कि बेटा, तुम हिंसा मत करो, तो उसका मतलब हमलोग लगाते हैं कि किसी को चोट नहीं पहुँचाना, चोट भी शारीरिक। पर योग में अहिंसा का मतलब होता है, व्यक्तित्व से हिंसा को हटा देना।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि योगी आसक्ति-रहित होकर मन, वाणी और बुद्धि से आत्मशुद्धि के लिए कर्म करते हैं –

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥5.11॥

इस श्लोक में हमें एक सरल उपाय दिखायी देता है, जिसके द्वारा हम अपने व्यक्तित्व और विचार में इस प्रकार का परिवर्तन ला सकते हैं। किसी विचार की उत्पत्ति अकेले नहीं होती। एक विचार के पीछे अनेक कड़ियाँ होती हैं। सबसे पहले एक कल्पना होती है; कल्पना से इच्छा होती है; इच्छा से विचार उत्पन्न होता है; तत्पश्चात् उसे कार्यान्वित करने के लिए एक योजना का जन्म होता है, और योजना के बाद कर्म होता है। यह क्रम है। यह एक प्रक्रिया है।

बुद्धि, भावना और कर्म

सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अवस्था में एक विचार का जो बीज पड़ता है, जो विचार अंकुरित होता है, वह बाद में कर्म के रूप में दिखायी देता है। यह कर्म शारीरिक

और भौतिक ही नहीं होता, बल्कि चेतना और व्यक्तित्व की क्रियाशीलता का नाम कर्म है। कर्म मात्र शरीर या बुद्धि या भावना या मन से नहीं होता, सम्पूर्ण व्यक्तित्व कर्म का क्षेत्र है। योग कहता है कि मनुष्य हाथ, हृदय तथा मस्तिष्क के गुणों द्वारा निर्मित है। मस्तिष्क का गुण है 'बुद्धि', हृदय का गुण है 'भावना', और हाथ का गुण है 'कर्म'। अब आप सोच लीजिए कि अगर हमारे व्यक्तित्व के ये तीन प्रमुख अंग हैं, तो इन तीनों को एक साथ ले कर चलना पड़ेगा। हम अपने विचारों को भावना और कर्म से अलग नहीं कर सकते। हम अपने कर्म को बुद्धि और भावना से अलग नहीं कर सकते।

लेकिन सामान्य रूप से यही होता है कि हम एक पक्ष को ही लेकर आगे बढ़ने का प्रयत्न करते हैं। अगर हम इन्द्रियों के प्रति सजग होते हैं, तो मात्र इन्द्रिय-कर्मों को देखते हैं। अगर हम आपको कहें कि मन की क्रिया के प्रति सजग हो जाइये, तो सबसे पहले आप अपने विचारों को देखने लगेंगे, क्योंकि मानसिक क्रिया के रूप में हमारे अपने विचार ही हमारे सामने हैं। शारीरिक क्रिया के रूप में इन्द्रिय अभिव्यक्तियाँ हमारे सामने हैं। अगर हम एक अवस्था में ही पूर्णता हासिल करने का प्रयास करेंगे, तो वह अधूरी ही रहेगी। उस अवस्था को सर्वांगीण विकास नहीं कहा जा सकता।

इसलिए हम कहते हैं कि जिस प्रकार शरीर को आरोग्य प्रदान करने के लिए कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है, जिसमें प्रमुख है 'आहार-संयम', ठीक उसी प्रकार मन को आरोग्य प्रदान करने के लिए एक विशेष नियम का पालन करना पड़ता है, और वह है 'विचार-संयम'। यह विचार-संयम ही हम लोगों का प्रमुख विषय है।

विचारों का रूप क्या है? अगर आप लोग कुछ क्षणों के लिए यह सोचें कि हमारे विचार का स्वरूप क्या है, तो कुछ लोग कहेंगे कि जब हम सोचते हैं तो अपने विचारों को अपने सामने लिखित रूप में देखते हैं। कुछ लोग कहेंगे कि हम अपने विचारों को एक दृश्य के रूप में देखते हैं; पर्वत, नदी, जंगल इत्यादि देखते हैं, तब हमें यह ज्ञान होता है कि यह पर्वत है, यह नदी है, यह जंगल है। अर्थात् दृश्य पहले और उसकी बौद्धिक अभिव्यक्ति बाद में। कुछ लोग कह सकते हैं कि बौद्धिक अभिव्यक्ति पहले, कल्पना बाद में। हर व्यक्ति अलग-अलग रूप में विचारों का विश्लेषण करेगा, लेकिन विचार मात्र इन्द्रिय अभिव्यक्ति के सूक्ष्म रूप हैं। वास्तव में देखा जाए तो इन्द्रियाँ पाँच नहीं, छः हैं। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं –

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥15.7॥

इससे मालूम पड़ता है कि मन को भी एक इन्द्रिय के रूप में देखा गया है। मन के भी दो अंग होते हैं। मैं आपको थोड़े गैर-पारम्परिक तरीके से समझाने जा रहा हूँ। जिस प्रकार से इन्द्रियों के दो भेद होते हैं – कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय, ठीक उसी प्रकार मन के भी दो रूप होते हैं।

मन का एक रूप है 'कर्म' और दूसरा है 'ज्ञान'। कहा जा सकता है कि मन-कर्मेन्द्रिय और मन-ज्ञानेन्द्रिय, हमारे जीवन में मन के ये दो रूप होते हैं। मन-कर्मेन्द्रिय प्रेरणा है। बिना प्रेरणा के मन शिथिल है, कार्य नहीं कर सकता। यह आन्तरिक प्रेरणा या मन-कर्मेन्द्रिय बाह्य जगत् और बाह्य कर्म से सम्बन्ध रखती है। मन-ज्ञानेन्द्रिय ज्ञान को ग्रहण करती है और परिस्थिति के अनुसार जब कर्म होता है, तब वह अभिव्यक्ति होती है सम्पूर्ण व्यक्तित्व की। योग शास्त्रों तथा भारतीय दर्शनों में इस बात पर जोर दिया गया है कि अगर मन को संयत करना हो, अपने नियंत्रण में लाना हो, तो उसके लिए नितान्त आवश्यक है कि अपने जीवन में वैराग्य-भाव को उत्पन्न किया जाए।

वैराग्य की आवश्यकता

अपरोक्षानुभूति में आदि गुरु शंकराचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार एक पक्षी के दो पंख होते हैं जिनके द्वारा वह उड़ान भरता है, ठीक उसी प्रकार मानव

जीवन के दो पंख होते हैं। एक को कहते हैं वैराग्य और दूसरे को कहते हैं विवेक। इन दोनों को समझना है, तभी हम अपने जीवन में सकारात्मक विचार को जन्म दे पायेंगे। हम लोग पहले वैराग्य और उसके बाद विवेक को देखेंगे।

वैराग्य क्या है? राग की विपरीत अवस्था। योग सूत्रों में कहा गया है – *सुखानुशयी रागः*। सुख के प्रति आकर्षण राग है। सुख, शान्ति, आनन्द और स्वार्थपूर्ति हेतु हम जो करते हैं, उसके पीछे एक आकर्षण रहता है। इसी को गीता में फलाकर्षण कहा गया है, फल के प्रति आकर्षण का होना। परिणाम चाहना या फल की इच्छा रखना राग है। वैराग्य का अर्थ होता है राग-रहित होना, जीवन की वह अवस्था जहाँ पर आकर्षण न हो, मन की वह अवस्था जिसमें आकर्षण न हो।

राग की विपरीत अवस्था के बारे में योग सूत्रों में कहा गया है – *दुःखानुशयी द्वेषः*। यहाँ पर द्वेष का अर्थ होता है, विकर्षण। आकर्षण और विकर्षण जीवन की वास्तविकताएँ हैं, जो इन्हें समझने का प्रयत्न नहीं करता, वह अज्ञानी है। जीवन में, विचारों, कर्मों और भावनाओं में हर प्रकार के राग की स्थिति उत्पन्न होती है। जिसे हम लोग प्रेम, पसन्द, कामना, वासना या लालच कहते हैं, वह है राग। जहाँ पर इसकी विपरीत अवस्था आती है, जहाँ पर मनमुटाव हो जाता है, जहाँ पर अनिच्छा होती है, वहाँ पर द्वेष है। द्वेष का मतलब यहाँ घृणा नहीं, बल्कि अनिच्छा या विकर्षण की स्थिति है।

राग और द्वेष दो चुम्बक हैं, जिनके बीच हमारा मन इधर से उधर भटकता रहता है। जब कभी राग की ओर आकृष्ट होता है, उस समय रागपूर्ण, कामनापूर्ण और इच्छापूर्ण विचार उत्पन्न होते हैं। वे विचार हमारे जीवन और कर्मों को एक दिशा देते हैं। जब विकर्षण होता है, तब उस समय विकर्षणपूर्ण विचार उत्पन्न होते हैं, जो हमारे जीवन और कर्मों को दूसरी दिशा प्रदान करते हैं।

इसलिए सबसे पहले एक विधि के द्वारा हमें यह निश्चित करना है कि किस प्रकार हम राग की अवस्था से हटकर विराग की अवस्था को प्राप्त करें, जिसको वैराग्य कहते हैं। यह राग का प्रतिवाद नहीं है, क्योंकि यदि राग का प्रतिवाद हो जाए, तो वह द्वेष है। यह राग का निषेध नहीं, मात्र एक अवस्था के प्रति सजगता है। उस अवस्था से जो भावना, जो संस्कार, जो कर्म जुड़े रहते हैं, उन्हें थोड़ा अलग कर देना है। राग से थोड़ा हट जाना है, विकर्षण या द्वेष की तरफ नहीं जाना है। इसी को कहते हैं अनासक्त-भाव। राग का अर्थ होता है जोड़ना और द्वेष का अर्थ होता है काट देना। जब हम बिजली

के तारों को जोड़ते हैं तो उनमें टेप बाँधते हैं। तार तो जुड़े हैं, लेकिन जोड़ को मजबूत बनाने के लिए हम उसमें टेप बाँध देते हैं, तो वह स्थिति आ जाती है राग की। अगर हम उन्हें अलग करना चाहें, तो जोड़ को पूरा खोलना पड़ता है। अनासक्त भाव होता है कि तार नजदीक रहें, उन्हें बाँधने की आवश्यकता न पड़े, और नजदीक रहते हुए भी प्लग-सॉकेट की तरह दूरी बनी रहे।

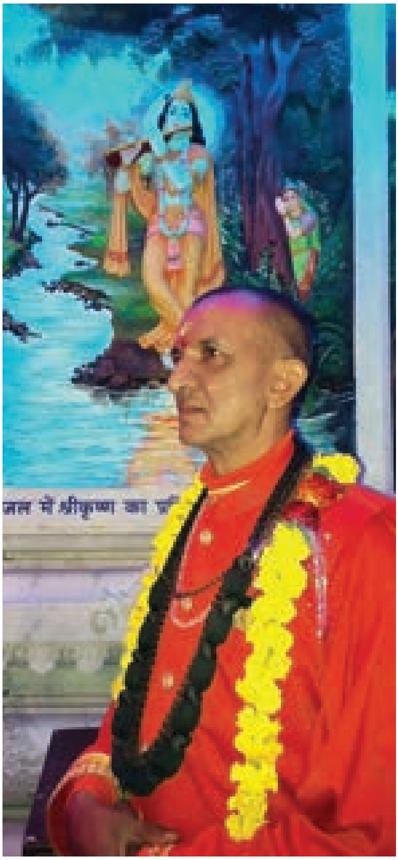

श्रीकृष्ण ने इसी अवस्था को समझाने के लिए कहा है कि जो कुछ तुम्हें मिले, उसे अनासक्त भाव से ग्रहण करो; स्वयं की इच्छा मत रखो, क्योंकि जहाँ इच्छा आयेगी, वहाँ पर या तो राग होगा या द्वेष। इसलिए निश्छल भाव से, स्वयं के साथ छल नहीं करना, मात्र देखते रहना है कि हम किस ओर आकृष्ट हो रहे हैं, किस ओर से विकर्षण हो रहा है, और किस प्रकार हम इन दोनों के मध्य अपना सन्तुलन बनाए रख सकते हैं। इसको कहते हैं वैराग्य।

विवेक का महत्त्व

वैराग्य की परिणति होती है विवेक में, क्योंकि अगर आप इतना देख सकते हैं, तो अज्ञान की स्थिति में तो नहीं देखेंगे। अगर अज्ञान है, तो इतना नहीं देख सकते हैं, सीधी बात। यह जो बीच में रहकर देखने की क्षमता है, इसे कहते हैं विवेक या सही ज्ञान।

सर्कस में हम लोग देखते हैं, रस्सी बँधी रहती है और एक आदमी उस पर चलता है। वह अपने संतुलन को बनाये रखता है, न इस तरफ गिरता है, न उस तरफ। वह एक किनारे से दूसरे किनारे चले जाता है। यहाँ पर तो वह हमें

एक करतब दिखायी दे रहा है, लेकिन इसके पीछे एक रहस्य है। पहली चीज, इतना संतुलन है कि वह डगमगाता नहीं, और अपने संतुलन के प्रति पूर्ण रूप से सजग है, देखता रहता है कि कहीं मेरे पैर गलत स्थान पर न पड़ें। इसलिए इस करतब के पीछे जो रहस्य है, वह है वैराग्य – संतुलन और सजगता। पहले तनावरहित होना, और उससे जो ज्ञान अर्जित होता है, जिसे हम लोग विवेक कहते हैं, उसके अनुसार चलना। तभी सकारात्मक विचार उत्पन्न होते हैं।

विचारों को रोका नहीं जाता, जैसा कि बहुत लोग सोचते हैं, बल्कि उन्हें आने देना चाहिए, पर विचारों के वेग या प्रवाह में बहना नहीं है। विचार घोड़े के सदृश हैं, जिनपर लगाम लगाना जरूरी है। अगर बेलगाम घोड़े पर सवारी की जाए तो वह विचार रूपी घोड़ा कहाँ-से-कहाँ चला जाएगा, इसका कोई पता नहीं। लगाम लगाने की प्रक्रिया को ही योग की भाषा में कहते हैं – संयम।

इस अवस्था को प्राप्त करने का जो तरीका बताया गया है, वह है सजगता, एकाग्रता और ध्यान का तरीका। यह समझना बहुत आवश्यक है, क्योंकि बहुत लोग कहते हैं कि स्वामीजी हम ध्यान तो करते हैं, लेकिन मन नहीं लगता। अरे! मन क्यों नहीं लगता? इसलिए कि ध्यान को तुमने यान्त्रिक बना दिया है। ध्यान की प्रक्रिया को तुम यंत्रवत् समझने लगे हो कि आँखें बंद कीं और मशीन चलने लगी, और हम भी उसके साथ चलने लगे।

ध्यान करने के पूर्व, सर्वप्रथम सजगता का होना अनिवार्य है। सजगता का तात्पर्य है परिस्थिति, परिवेश और परिसर के प्रति जागरूकता। हमारे शरीर में क्या गुजर रहा है, हमारे मन की क्या स्थिति है, उसके प्रति जागरूक होना। तभी ध्यान के द्वारा संयम की स्थिति प्राप्त होती है।

चित्त पर पड़ते रहने वाले संस्कारों को उड़ा फेंकने के लिए वैराग्य भाव की सख्त जरूरत है। अधिकांश लोग प्राप्त संस्कारों पर उधेड़बुन करते रहते हैं। ऐसे लोग भी हैं जो प्राप्त संस्कारों से प्रभावित होकर कर्म करने पर बाध्य हो जाते हैं। परन्तु वैराग्यवान् साधक चित्त पर पड़ने वाले पल-प्रतिपल की छापों को साक्षी भाव से आते-जाते देखता है। तभी वह शुद्ध सत्त्व को अविरल बनाए रखता है। यही है अंतरंग साधना।

– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

वैराग्य क्या है?

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

लोगों में आम धारणा पाई जाती है कि वैराग्य का तात्पर्य जीवन में हर वस्तु के त्याग से है, परन्तु यह धारणा सत्य से कोसों दूर है। वैराग्य का अर्थ त्याग कतई नहीं है। वैराग्य की मनोवृत्ति जीवन के ऐशो-आराम के बीच रहते हुए भी बनाई जा सकती है। जीवन को त्यागने अथवा नकारने की जरूरत नहीं। राग की जड़ें मन में गहराई तक जमी रहती हैं। इस बात की कोई गारंटी नहीं कि जिसने जीवन में सब कुछ त्याग दिया है, वह सच्चे अर्थों में विरागी ही हो। हो सकता है ऊपर से विरागी दिखने वाला व्यक्ति अपने अन्दर राग-द्वेष लिये फिरता हो।

वैराग्य का मतलब उदासीनता अथवा नापसंदगी भी नहीं होता। हम प्राय: मानते हैं कि विरागी व्यक्ति अपने चारों ओर के व्यक्तियों तथा वस्तुओं के प्रति उदासीन रहता है, उनसे घृणा करता है। परन्तु सच्चाई इसके विपरीत होती है। सच्चा वैराग्य केवल तभी सम्भव है, जब आप जीवन की हर शुभाशुभ घटना से पूरी तरह अप्रभावित रहें। वही व्यक्ति सही अर्थों में वैराग्यवान् कहा जा सकता है जो सफलता-विफलता, मान-अपमान, लाभ-हानि, प्रेम-घृणा अथवा सुख-दुःख की हर स्थिति में प्रसन्न रहते हुए अपना मानसिक सन्तुलन बनाये रखता है।

वस्तुयों तथा व्यक्तियों से लगाव ही हमारे सुख-दुःख का कारण है। जिस वस्तु के प्रति हमारा लगाव होता है, हम उस पर निर्भर हो जाते हैं। हमारी यह निर्भरता उस वस्तु की दासता में बदल जाती है। यही लगाव अथवा ममता आगे चलकर हम पर शासन करने लगती है। यदि हमारे लगाव की वस्तु हमारे सामर्थ्य अथवा पहुँच के बाहर हो, तो हम अत्यन्त दुःखी होकर उसे प्राप्त करने का हवाई महल बनाते रहते हैं। यदि हम उसे प्राप्त कर लेते हैं तो उसके खो जाने का भय हर क्षण हमें आतंकित करता रहता है। इस प्रकार आपका समूचा व्यवहार, सोचने-समझने का ढंग और जीवन के प्रति दृष्टिकोण सीमित और दूषित हो जाता है।

लगाव के साथ ही अधिकार के भाव का उदय होता है – मेरा घर, मेरा परिवार तथा मेरे धन की भावना दृढ़ होने लगती है। इस प्रकार के अधिकार

की भावना हमारे निम्न अहंकार की पोषक होती है। यह झूठा अहं अब आपके विचारों, कार्यों, पसंदगी, नापसंदगी, इच्छा तथा वासनाओं को प्रभावित करता है। अब यदि दैववशात् आपके ममत्व की किसी वस्तु के छिन जाने अथवा नष्ट होने का खतरा उत्पन्न होता है तो आप अपना सन्तुलन खो बैठते हैं, पागल हो जाते हैं। इस झूठी, परन्तु गहरी ममता के कारण आप वस्तुओं के मालिक नहीं, बल्कि गुलाम हो जाते हैं।

यदि आप कल्पना के नेत्र से किसी शक्तिशाली विशालकाय मनुष्य को सांकल से बंधा देख सकें, तो अनुभव करेंगे कि ममता के बन्धनों में बंधा मनुष्य कितना सीमित और विवश हो सकता है, क्योंकि वह जय-पराजय के उल्लास अथवा दंश को नहीं सह पाता। वह बैडमिण्टन के शटल कॉक अथवा घड़ी के दोलक की भाँति दो अतियों के बीच थपेड़ा खाता, डोलता रहता है। उसका मन तथा व्यक्तित्व इतने मजबूत नहीं होते कि वह हर परिस्थिति के प्रभाव को सन्तुलनपूर्वक सहन कर सके। अंत में वह बुरी तरह टूटकर बिखर जाता है।

वैराग्य हमारे अन्दर विचार और कर्म की स्वतंत्रता लाता है। वह आपको निम्न चेतना के बन्धनों से छुड़ाता है। एक वैराग्यवान् व्यक्ति जीवन के हर आनन्द का उपभोग करता है। वह परिवार बनाता, संतानोत्पत्ति करता, धन तथा पद और यहाँ तक कि एक साम्राज्य का भी निर्माण कर सकता है, परन्तु अपनी वैराग्य भावना के कारण वह इनमें से किसी का गुलाम नहीं बनता। वह एक मालिक की तरह हर वस्तु का उपभोग करता है, गुलाम की तरह नहीं। उसके भीतर एक स्वतंत्रता का भाव होता है जो उसे वस्तुओं की गुलामी से बचाता है। चूँकि वह सर्वथा सन्तुलित और निष्प्रभावित रहता है, कोई भी दुःखद घटना उसे टूटने नहीं देती। इसी कारण वह हर परिस्थिति का स्वामी होता है।

इस प्रकार वैराग्य हमें जीवन की हर कठिनाई तथा परीक्षा की घड़ी में सन्तुलित तथा अप्रभावित रहना सिखाता है। वैराग्य हमें अपने आस-पास के लोगों से प्रेम करना, उनके साथ एकत्व की भावना रखना सिखाता है। इसके पूर्व भी आप व्यक्तियों तथा वस्तुओं से प्रेम करते तथा लगाव रखते थे, परन्तु इसका कारण आपकी उन पर निर्भरता तथा लगाव होता था, क्योंकि इससे आपको सुख तथा तृप्ति का अनुभव होता था। परन्तु वह सच्चा प्रेम नहीं था। बाहर से देखने पर ऐसा लगता था कि आप उनसे प्रेम करते हैं, परन्तु सच्चाई यह है कि आप स्वयं अपने लाभ के लिये उनसे चिपके थे। यह आपकी मांग

थी, आवश्यकता थी, उन पर आपकी निर्भरता थी, उनकी आकांक्षा थी जो आपके भीतर उनके प्रति तथाकथित प्रेम उत्पन्न करती थी।

यदि आपमें वैराग्य दृढ़मूल है, तो आपको इनके प्रति जिस प्रेम का अनुभव होगा वह आपकी पसंदगी, नापसंदगी, लालच अथवा महत्त्वाकांक्षा द्वारा सीमित नहीं होगा। यह प्रेम आपके अपने दृष्टिकोण से अप्रभावित होगा, क्योंकि आप उन वस्तुओं तथा व्यक्तियों पर जरा भी आश्रित नहीं होंगे, जिन्हें आप चाहते हैं। आप उनसे सिर्फ इसलिये प्रेम करते हैं कि आप उनके साथ एकत्व का अनुभव करते हैं। अपने भीतर वैराग्य को विकसित करने के पश्चात् ही आप अपने व्यक्तित्व की व्यापकता व्यक्त कर सकते हैं तथा अपने भीतर निहित उच्च गुणों को अभिव्यक्ति प्रदान कर सकते हैं। जब तक झूठी ममता की जकड़ में रहेंगे, सीमित रहेंगे, निम्न वासनाओं तथा भावनाओं से बन्धे रहेंगे, तब तक ऐसा सम्भव नहीं है।

इसी कारण गुरु को सार्वभौमिक चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम कहा गया है। वे प्रत्येक व्यक्ति को समान भाव से प्यार देते तो हैं, परन्तु भीतर से सर्वथा रागरहित तथा स्वतंत्र रहते हैं। गुरु की दृष्टि में महात्मा-दुरात्मा, धनी-निर्धन, विद्वान्-मूर्ख, सुन्दर-असुन्दर का भेदभाव नहीं होता। वे सबको समान रूप से अपने प्रेम का दान देते हैं।

हालाँकि इस कोटि का वैराग्य कोई सामान्य उपलब्धि नहीं कहलाती, परन्तु इसे अपने दैनिक जीवन में उतारने का हमेशा प्रयास करना चाहिए। साधक को उन नकारात्मक प्रभावों के प्रति हर क्षण सचेत रहना चाहिए, जो वस्तुओं तथा व्यक्तियों के प्रति राग के कारण उसके व्यक्तित्व को विपरीत ढंग से प्रभावित करते हैं। उसे अपने भीतर धीरे-धीरे वैराग्य की भावना विकसित करनी चाहिए ताकि उसे सच्चे सुख और तृप्ति का अनुभव हो सके। यदि वह अपनी सन्तान से प्रेम करता है, तो उसे उनसे भी प्रेम करना सीखना चाहिए जो उसकी अपनी सन्तान नहीं हैं। यदि वह अपनी सन्तान को सुरक्षित रखने के प्रति सचेत और चिन्तित है, तो उसे उतना ही सचेत और चिन्तित दूसरों की संतानों तथा वस्तुओं के प्रति भी होना चाहिए। तब वह विश्व की हर वस्तु तथा व्यक्ति के प्रति प्रेम और आत्मीयता का अनुभव करेगा, तभी उसके भीतर सच्चे वैराग्य का उदय होगा।

जब आप आश्रम जाते हैं तो जब तक वहाँ ठहरते हैं, उसे अपना ही घर मानते हैं। आश्रम किसी का नहीं होता, परन्तु वह सबका अपना घर भी होता

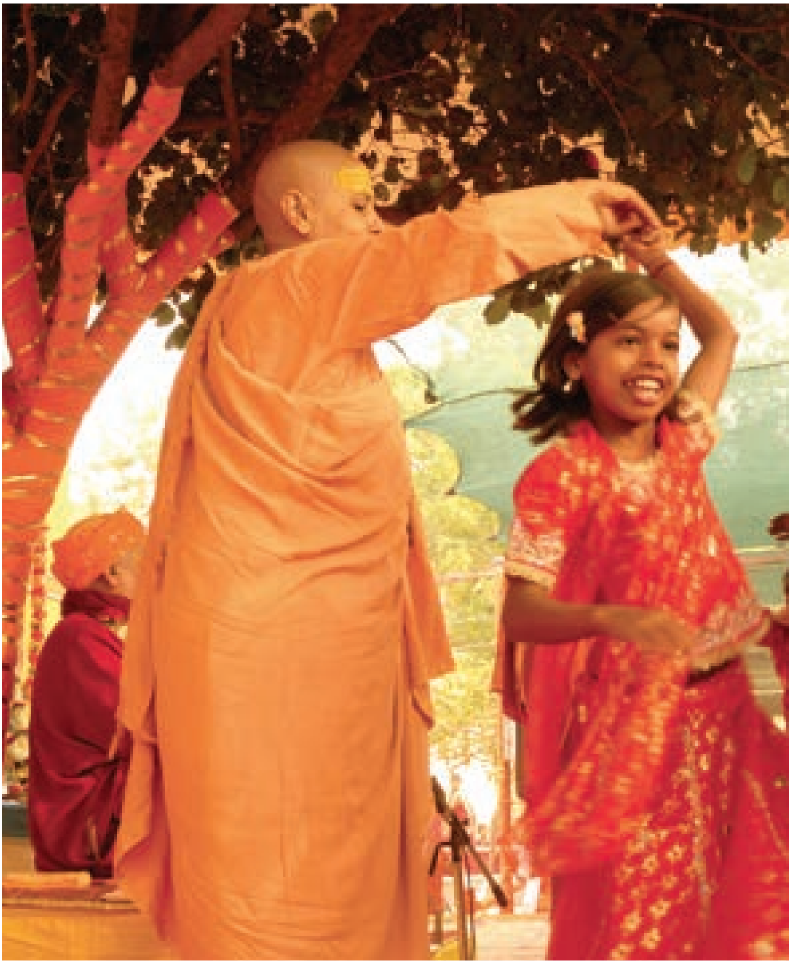

है। एक आश्रम उन सभी आश्रमवासियों तथा आगंतुकों के मिले-जुले कार्यों तथा योगदान का प्रतिफल होता है, जो वहाँ रहते या कुछ समय के लिये वहाँ आकर ठहरते हैं। हर व्यक्ति जो आश्रम आता है, उसकी साज-संभाल में पूरा योगदान देता है, जबकि उसमें स्वामित्व का जरा भी भाव नहीं होता। ठीक इसी प्रकार ममत्व अथवा स्वामित्व की भावना के बिना आप भी अपने आस-पास की हर वस्तु से प्यार करना सीखें। यह मनोवृत्ति समय के साथ जैसे-जैसे आपमें विकसित होगी, आपको अपने भीतर उत्तरोत्तर विकसित होते वैराग्य का अनुभव होगा।

सच्चा त्याग

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

किसी पावन तीर्थस्थान पर दो साधु रहते थे। उनमें से एक अपने पूर्वाश्रम में बहुत धनाढ्य सेठ हुआ करता था और साधु बनने के बाद भी उसके बच्चों ने प्रेमवश उसके रहने की अच्छी व्यवस्था कर रखी थी। यहाँ तक कि कुछ नौकर-चाकर भी उसकी कुटिया में रख छोड़े थे, ताकि साधु के आराम और सुख-सुविधा में कोई कमी न रह जाए। दूसरा साधु बहुत कठोर तपोमय जीवन व्यतीत कर रहा था। उसका काम भिक्षाटन से चलता था। उसके पास एक कमण्डलु, मृगचर्म और एक जोड़ी कपड़े के अलावा कोई सम्पत्ति नहीं थी।

गरीब साधु अपने तप, त्याग और संन्यास के बारे में मन-ही-मन गर्व महसूस करता था, और अक्सर उस धनी साधु की खिल्ली उठाया करता था। जब भी अन्य साधु-संन्यासी या भक्त लोग गरीब साधु के पास आते, वह उस धनी साधु की चर्चा जरूर करता और हमेशा उसके अमीर होने पर व्यंग्य कसता। वह कहता, 'भाई, इन महाशय ने जब देखा कि सांसारिक जीवन और गृहस्थ आश्रम का भार अब इस बूढ़े शरीर से नहीं उठ पाएगा तो सोचा क्यों न साधु ही बन जाया जाए। तभी तो इस ढोंगी ने आज भी अपनी सुख-सुविधाओं का त्याग नहीं किया है, आज भी वह विलासिता का जीवन ही जी रहा है।'

इस प्रकार समय बीतता गया, गरीब साधु की क्षुब्धता बढ़ती गई और एक दिन तो उसने अपने त्यागी, वैरागी और तपस्वी होने के मद में आकर धनी साधु को त्याग पर भाषण ही दे डाला। वह उससे बोला, 'त्याग में बहुत बड़ी ताकत होती है भाई, पर वह सच्चा होना चाहिए, मेरी तरह। ठीक है, आपने अपना घर-परिवार और धन त्याग दिया, पर इस विलासिता भरे जीवन को आप कब त्यागेंगे?'

इतना सुनते ही धनी साधु बोला, 'नारायण, नारायण! बस अभी इसी क्षण मैं इस जीवन को त्यागता हूँ जी, चलिये हम लोग यहाँ से उत्तरकाशी की ओर चलते हैं, अभी इसी वक्त।' गरीब साधु एकदम भौंचक्का रह गया। उसने इस प्रकार के उत्तर की कल्पना भी नहीं की थी। पर अब तो वह अपने ही जाल में फँस चुका था। गया था उस अमीर साधु को नीचा दिखाने, लेकिन

ಭಾರತ ಯೋಗ ಯಾತ್ರಾ ಬೆಂಗಳೂರು, ಕರ್ನಾಟಕ
MARCH 21ST, 22ND, 23RD 2025
ಯೋಗ ಸಾಧನಾ ಸತ್ರ – ಆಧ್ಯಾತ್ಮದೆಡೆಗೆ ಹೆಜ್ಜೆ
ಶ್ರೀ ಸ್ವಾಮಿ ನಿರಂಜನಾನಂದ ಸರಸ್ವತಿಯವರ ಮಾರ್ಗದರ್ಶನದಲ್ಲಿ
ಪರಮಾಚಾರ್ಯರು, ಬಿಹಾರ್ ಸ್ಕೂಲ್ ಆಫ್ ಯೋಗ
ವಿಶ್ವ ಯೋಗಪೀಠ, ಗಂಗಾ ದರ್ಶನ್, ಮುಂಗೇರ್, ಬಿಹಾರ್
BHAR T YOGA YATRA, BENGALURU, KARNATAKA
oga Sadhana Satra – Step Into Spirituality
Under the guidance of Sri Swami Niranjanananda Saraswati,
Paramacharya, Bihar School of Yoga
Vishwa Yogapeeth, Ganga Darshan, Munger, Bihar

अब उत्तरकाशी जाने के लिए मना भी नहीं कर सकता था। बस दोनों चल पड़े उत्तरकाशी की ओर।

एक-आध किलोमीटर की दूरी ही तय किए होंगे कि अचानक गरीब साधु बोला, 'अरे भाई, बहुत भारी गलती हो गई। मैं अपना कमण्डलु और मृगचर्म तो अपनी कुटिया में भूल आया हूँ। जरा ठहरो, मैं तुरन्त जाकर उसे ले आता हूँ।' यह सुनकर अमीर साधु मुस्कुराने लगा, और उस गरीब साधु का सर शर्म से झुक गया।

आसक्ति, मोह और ममता का त्याग ही असली त्याग है। धनी साधु एक क्षण में अपना सब कुछ त्याग कर चल दिया, पर गरीब साधु अपने तुच्छ कमण्डलु और मृगचर्म से चिपका रहा।

जीवन का महामंत्र

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मानव है एक पंछी और उसकी उड़ान है जीवन। जीवन की उड़ान से ऐ मानव, तू मौत रूपी उत्तुंग, भयानक और विकराल पर्वतश्रेणी को पार कर ले। तू शिव और शक्ति को आत्म-समर्पण कर दे। वे तुम्हें आत्मशक्ति देकर तुम्हारे डैनों में अगाध शक्ति भर देंगे। फिर न तू जीवन से थक जायेगा, न मौत से हार खायेगा। तू अविरत गति से ईश्वर के उन्मुक्त साम्राज्य में विचरण करता रहेगा – अनंत युगों तक अमरत्व के अमृतमय उत्संग में खेलता रहेगा। आ, मैं धीरे से, आहिस्ता से तेरे कानों में जीवन का महामंत्र फूकूँगा – वह मंत्र है 'त्याग'।

स्वेच्छापूर्वक आत्म-समर्पण करने का नाम है त्याग। यही है परम पवित्र एवं उच्च आदर्श और श्रेष्ठ भावना। यही है परम कर्त्तव्य। फिर भावना श्रेष्ठ या कर्त्तव्य, इस प्रश्न का स्थान ही कहाँ? त्याग के इस भावनामय कर्त्तव्य से और कर्त्तव्य-भावना से हमें जीवन को पूर्णतया बदल देना है। त्याग के चरणों में हमें प्रेमपूर्वक अपना सारा जीवन न्यौछावर करना है। त्याग में प्रेम सन्निहित है और प्रेम का प्रोज्ज्वल स्वरूप ही त्याग है। त्याग विवेकपूर्ण होना चाहिए। अंधविश्वास से किया गया त्याग क्या त्याग है? त्याग का घमण्ड त्यागी के हृदय की कालिमा है। 'अपने सर्वस्व का मैं बलिदान दे रहा हूँ' इस भावना का स्वप्न में भी प्रवेश त्यागी की लघुता का सूचक है। जिस सिद्धान्त को जीवन में अपनाया, जिस महानुभाव को जीवन समर्पित किया, उनको मरते दम तक और जब तक जन्म लेना पड़े, तब तक वफादार रहना और उसमें किसी भी प्रकार की बाधा पहुँचाने वाले तमाम तत्त्वों से सदा दूर रहना, यही है सच्चा त्याग। त्याग के गौरव-गरिमा के लिए त्यागी के दिल में शोक और व्याकुलता नहीं, किन्तु आनंद और उल्लास चाहिए।

त्यागी को तलवार की तरह अपना जीवन बिताना चाहिए। तलवार को जीवन का आदर्श समझकर उसकी तरह जीवन समर्पण करना चाहिए। तलवार एक बार जिसके हाथों में जाती है, उसका वह कभी विरोध नहीं करती। वह इसको अच्छी तरह से जानती है कि उसका आदर-निरादर सब कुछ मालिक के ही हाथों में है। अतः मालिक के हाथों में जाकर उसका वह विरोध नहीं करती। अपने टुकड़े-टुकड़े हो जाने पर भी वह आह तक नहीं भरती। यही

तो है त्याग। स्वेच्छा से किया हुआ आत्म-समर्पण ऐश्वर्य के समान भोगा जा सकता है, किन्तु ऐश्वर्य के भोग का फल है दुःख और आत्म-समर्पण का फल है सुख। पहले में गर्व है और दूसरे में गौरव।

किसी कवि ने लिखा है कि 'मत हो विरक्त जीवन से, अनुरक्त न हो जीवन पर।' हमारा जीवन ऐसा ही होना चाहिए। संसार के सुख भोगों के मध्य में रहते हुए भी हमें उनसे निर्लिप्त रहना चाहिए। हमें संसार से भागना नहीं है, सांसारिकता से भागना है। प्रलोभनों से भागना नहीं है, किन्तु उन्हें पराजित करना है।

संसार से या संसारी से घृणा करना या कठोरता दिखलाना त्याग नहीं है। अनुरक्ति और विरक्ति का मध्यम मार्ग ही त्याग है। राग को वस्तु या व्यक्ति विशेष में सीमित न रखकर समान रूप से विभाजित करने का नाम है त्याग।

त्याग द्वारा हमें कुटुम्ब के बंधन को, समाज के बंधन को और दुनिया के बंधनों को काटना है। सुख-वैभव रूपी लौह-शलाकाओं के संसार-पिंजड़े को तोड़कर उड़ जाना है, अमरता के गीत गाने, स्वतंत्रता का आस्वादन करने, दूर, दूर, बहुत दूर विशाल वन में जहाँ सब कुछ अनंत ही अनंत है। 'उड़ जा पंछी मौत से दूर' के परम पवित्र मंत्रोच्चारण के साथ प्रयत्न करते रहना है, जब तक हम वहाँ पहुँच न पाएँ।

– योग-वेदान्त के फरवरी 1956 अंक से साभार उद्धृत

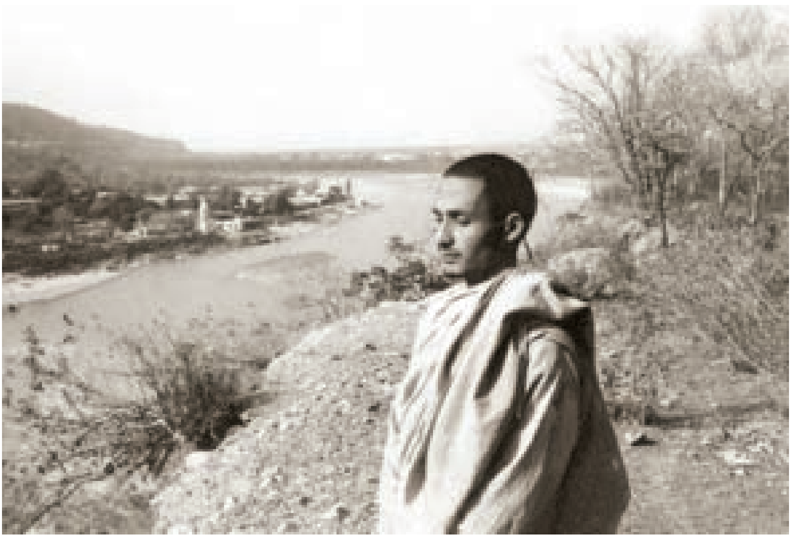

वैराग्य का आदर्श

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

श्रीमद्भगवद्गीता में आदर्श जीवन के बारे में समझाते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः॥12.18॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥12.19॥

अर्थात् जो शत्रु और मित्र में तथा मान और अपमान में सम है तथा सर्दी, गर्मी और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में सम है और आसक्ति से रहित है, जो निन्दा-स्तुति को समान समझने वाला और मननशील है एवं किसी भी प्रकार से शरीर का निर्वाह होने में सदा ही संतुष्ट है तथा रहने के स्थान में ममतारहित है, वह स्थिर बुद्धि वाला भक्तिमान् पुरुष मुझे प्रिय है।

उन्होंने यह नहीं कहा कि आदर्श जीवन का अनुसरण करने के लिए अपना घर और समाज छोड़ना पड़ेगा। आज तक किसी सन्त, महात्मा या मनीषी ने यह बात नहीं कही है। उन सब ने तो इतना ही कहा है कि आदर्श जीवन जीने के लिए, अपने आपको व्यवस्थित रखने के लिए जिसे छोड़ना है, वह है अपनी आसक्ति। संसार, भोग, घर, परिवार या सुख-सुविधा को छोड़ने की कतई आवश्यकता नहीं, केवल उनके प्रति आसक्ति को छोड़ने के लिए कहा गया है।

बहुत लोगों को एक प्रकार का क्षणिक वैराग्य हो जाता है, जिसे कहते हैं श्मशान वैराग्य। अगर किसी नजदीकी सम्बन्धी का देहान्त हो जाए और व्यक्ति उसके दाह-संस्कार का साक्षी बने, तो उसे देखकर कुछ समय के लिए वैराग्य उत्पन्न हो जाता है, जिसे कहते हैं श्मशान वैराग्य। लेकिन वह वास्तविक वैराग्य नहीं है। जब अनुकूल परिस्थिति के न होने पर वैराग्य की उत्पत्ति होती है, तब वह असली वैराग्य नहीं होता, बल्कि दुःख की अवस्था से हटने के लिए जो इच्छा उत्पन्न होती है वह वैराग्य के रूप में सामने आती है। श्मशान वैराग्य पहले हुआ करता था, आजकल तो स्कूल वैराग्य और कॉलेज वैराग्य होने लगा है। जब बच्चों के अच्छे नम्बर नहीं आते या वे फेल हो जाते हैं, तब उन्हें स्कूल और कॉलेज वैराग्य हो जाता है! वे कहते हैं, हमारे अच्छे नम्बर तो आते ही नहीं, अब हम नहीं पढ़ेंगे, अब हम स्कूल-कॉलेज नहीं जायेंगे! इसी चिन्ता में तनाव और विषाद होता है, लेकिन इसका मूल कारण है आसक्ति। व्यक्ति अपनी कामनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं से इतना घुल-मिल जाता है कि उनसे अलग होना सम्भव नहीं होता।

भारतीय परम्परा में विवेकपूर्ण निर्णय के लिए प्रायः राजहंस का उदाहरण दिया जाता है। राजहंस एक ऐसा पक्षी है जिसमें दूध को पानी से अलग कर देने की क्षमता है। इस संसार में आकर, हम लोगों के मन और आत्मा बाहरी संसार से इतने घुल-मिल जाते हैं कि हमारी आत्मशक्ति और बाहरी वातावरण की विक्षिप्तता एवं चंचलता के बीच सामंजस्य नहीं बैठ पाता और इसी कारण जीवन में अशान्ति का अनुभव होता है। अपने अस्तित्व और सामर्थ्य को भूल कर, बाहर के प्रभावों में आकर हम अपने पुरुषार्थों या सामर्थ्यों की बजाय अपनी कमजोरियों को प्राथमिकता देने लगते हैं।

जिस प्रकार से राजहंस दूध और पानी को अलग कर देता है, उसी प्रकार से हर मनुष्य को ऐसा प्रशिक्षण मिलना चाहिए कि वह संसार से अपने

आपको अलग रख सके। इसी क्षमता को वैराग्य कहते हैं। त्याग को वैराग्य नहीं कहते, बल्कि एक सकारात्मक दृष्टिकोण को अपना कर अपने जीवन को व्यवस्थित करना ताकि वह बाहर के प्रभावों द्वारा विकृत और आतंकित न हो, वास्तिवक वैराग्य है। वैराग्य मन को प्रशिक्षित करने की एक प्रक्रिया है, जिसमें मनुष्य अपनी आसक्तियों और सम्बन्धों के प्रति सजग हो जाता है। उसे जानकारी मिलती है कि किस प्रकार आसक्ति उसे खुश करती एवं दुःखी बनाती है, कामना कर्मठ बनाती है, वासना चंचल कर देती है और किस प्रकार वह अपने आपको इन सबसे मुक्त रखकर एक व्यवस्थित, संतुलित और स्वस्थ जीवन जी सकता है। भारतीय संस्कृति में नीर-क्षीर विभेद की यह क्षमता ही साधना का उद्देश्य है।

मनुष्य में राग भी होता है और वैराग्य भी। राग का मतलब है आसक्ति और वैराग्य का अर्थ होता है आसक्ति या अनुराग का अभाव। वैराग्य अपने से तथा अपने अनुभवों से अलग रहना नहीं है। वैराग्य का अर्थ होता है अनुराग में सनकी प्रवृत्ति का अभाव, क्योंकि जहाँ पर भी अनुराग होगा, आप देखेंगे उसके साथ सनक जुड़ी होगी और यदि आप उस सनक को हटा दें, तो फिर उस अनुराग में कोई बुराई नहीं। परन्तु जब अनुराग सनक के साथ जुड़ जाता है, तब वह बुरा हो जाता है।

यदि हम अपने मानसिक व्यवहारों, जीवन की अभिव्यक्तियों, इच्छाओं और आकांक्षाओं को देखें, तो पायेंगे कि हम उन चीजों से जुड़ना चाहते हैं जो हमें सुख और प्रसन्नता देती हैं। योग में कहा जाता है कि जब हम सुख की कामना करते हैं तब राग की उत्पत्ति होती है – *सुखानुशयी रागः*। यह सुख क्या है? जीवन में जो भी सुख हम अनुभव करते हैं, वह या तो इन्द्रियों से जुड़ा रहता है या फिर बुद्धि और भावनाओं से। सामान्य रूप से यही इन्द्रिय सुख या बौद्धिक प्रसन्नता, जिसकी खोज हम करते रहते हैं, जो जीवन की हर अभिव्यक्ति के साथ जुड़ी होती है, राग का कारण बनती है।

अगर आपके सामने लकड़ी की एक कुर्सी और एक सोफा रखे हों तो आप किस पर बैठेंगे? यकीनन सोफे पर, क्योंकि आप एक प्रकार के सुख और आराम की खोज कर रहे हैं। उस समय हो सकता है आप इसके प्रति सजग न हों, परन्तु सुखमय स्थान ढूँढना एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यह राग उन सभी चीजों के साथ हो जाता है जिनके सम्पर्क में हम आते हैं। सुन्दरता, आकार, रंग और सुगन्ध के कारण एक फूल भी हमारे आकर्षण का केन्द्र

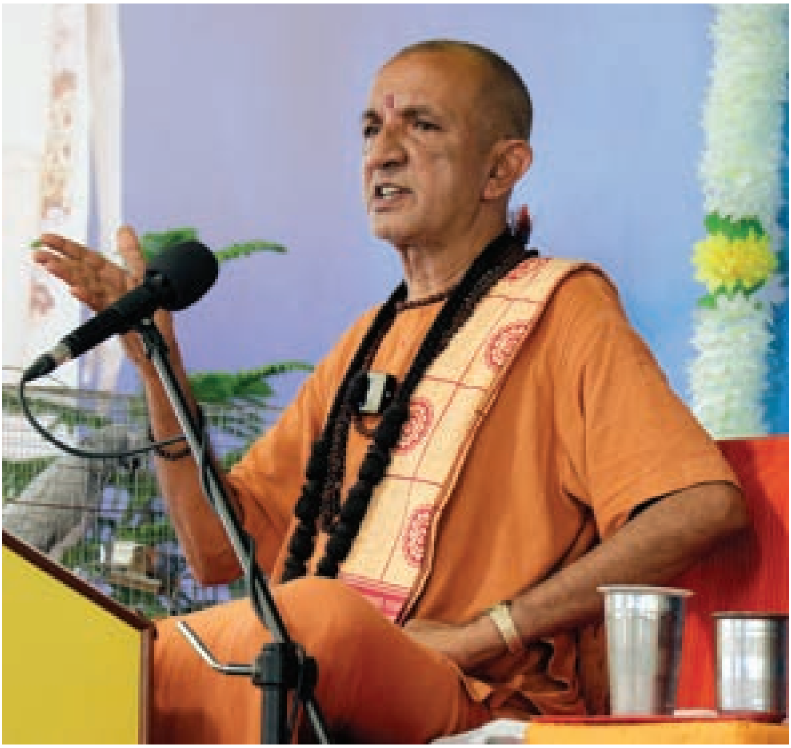

बन सकता है। कोई व्यक्ति भी आकर्षण का विषय बन सकता है। आप उस सम्बन्ध, उस लेन-देन की प्रक्रिया को बेशक बनाये रखिये, केवल उससे सनक को हटा दीजिए। बस, तब वह हो जाता है वैराग्य। जब इस प्रकार की भावना मन में उदय होती है तब उस समय एक विचित्र शान्ति का अनुभव होता है। लेकिन हम लोग सब चीजों को अपने ऊपर ले लेते हैं और उनसे उत्पन्न दुःखों को झेल नहीं पाते।

एक उदाहरण देते हैं। एक आदमी जिन्दगीभर काम करता है, उसकी अंतिम इच्छा होती है कि सेवा-निवृत्ति के पहले वह अपना एक मकान बना ले। आखिरकार मकान बन जाता है, आदमी सेवा-निवृत्त हो जाता है। अब मान लीजिए कि कुछ महीनों के बाद उस मकान में आग लग जाती है और वह मकान नष्ट हो जाता है। क्या उस दुःख को सहन करने की क्षमता उस आदमी में या हममें से किसी में है? वह एकदम असुरक्षित और हताश हो जाता है, सोचता है कि जिन्दगीभर की मेहनत खाक में मिल गयी। फिर जो दुःख का

पहाड़ उसके सिर पर टूट पड़ता है, उसको वह झेल नहीं पाता। कभी विषाद हो जाता है, तो कभी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। लेकिन मान लीजिए, घर के बजाय आपके दफ्तर में आग लगती है तो क्या आपको उतना ही दुःख होगा? नहीं, क्योंकि आप उससे जुड़े नहीं हैं। दुःख उसे होगा जो उसका मालिक है, जो उससे जुड़ा हुआ है।

व्यक्ति हर परिस्थिति को या तो अपने ऊपर आरोपित कर लेता है और दुःख झेलता है या फिर उससे पूर्णरूपेण अलग होकर चिन्तामुक्त रह सकता है। इसी अलग होने को योग में कहते हैं द्रष्टा भाव। द्रष्टा भाव या वैराग्य, अनुभव की एक ऐसी अवस्था है जब आप सनकी प्रवृत्ति से अपने को पूर्णतया अलग कर लेते हैं। और इस सनकी प्रवृत्ति से छुटकारा पाने का प्रयास विवेक के माध्यम से होता है। जब आप उचित-अनुचित में भेद कर पाएँ, तभी आप इस सनकी विचार-व्यवहार से अपने को निकालने का प्रयास कर सकते हैं। विवेक और वैराग्य व्यक्ति की मानसिकता में परिवर्तन दर्शाते हैं और इस परिवर्तन को लाने का व्यावहारिक तरीका है ध्यान। सोचने मात्र से यह परिवर्तन नहीं होगा।

अब प्रश्न उठता है कि ध्यान है क्या? केवल आँखों को बन्द कर लेना और किसी असामान्य वस्तु के बारे में सोचना? आखिर जीवन में ध्यान की क्या प्रासंगिकता है, क्या प्रयोजन है? केवल चेतना या मन के व्यवहार को देख सकना? या तनाव से मुक्ति तथा भीतर में कुछ शान्ति की प्राप्ति? या बाह्य जगत् से आँखों को बन्द करना तथा कुछ अतीन्द्रिय अनुभवों को प्राप्त करने का प्रयास करना? नहीं। ध्यान का एक केन्द्र होता है। मैं यहाँ प्रत्याहार या धारणा जैसी ध्यान की प्रक्रियाओं की बात नहीं कर रहा हूँ, बल्कि ध्यान को एक समग्र अभ्यास के रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ। इस रूप में ध्यान का एक निश्चित लक्ष्य होता है और वह लक्ष्य है आपमें वैराग्य की भावना विकसित करना एवं विवेक की सजगता बढ़ाने के लिए समझ पैदा करना। विवेक और वैराग्य की भावनाओं को ध्यान सशक्त बनाता है और यही ध्यान की वास्तविक प्रक्रिया भी है। जब हम ध्यान करते हैं, तो पहले क्या होता है? जो परेशानियाँ, दिक्कतें, नकारात्मक विचार और भय हैं, सबसे पहले हम उनको देख कर दूर करने का प्रयास करते हैं, यानि भिन्न-भिन्न वस्तुओं से अपने सम्बन्धों का निरीक्षण तथा किसी तरह से उनसे निपटने का प्रयास करते हैं।

मान लीजिये, दो लोगों के बीच बहस हो जाती है, झगड़ा हो जाता है। दिन-रात मन के भीतर वही घटना निरंतर घूमती रहती है और मन विचलित

रहता है। मन आक्रोश से भर जाता है, चिड़चिड़ा हो जाता है और तरह-तरह के विचार आते हैं कि किस प्रकार मैं उस व्यक्ति को जवाब दे सकता हूँ। घटना तो बीत चुकी है, लेकिन उसको हम अपने साथ लिये रहते हैं, पीछे नहीं छोड़ते। यह चीज जिसे हम हमेशा लिये रहते हैं, राग है। यह नकारात्मक भी होता है और सकारात्मक भी। लेकिन घटना घटने के समय ही उस परिस्थिति को वहीं पर छोड़ सकने की जो क्षमता होती है, उसे कहते हैं वैराग्य। दिन के अन्त तक या जीवन पर्यन्त उसे अपने साथ लेकर मत चलिए। एक घटना जो जीवन में कभी किसी समय घटी है, आप उससे अनुभव और ज्ञान अवश्य प्राप्त कीजिए, लेकिन उसके बाद उसे वहीं छोड़ दीजिए, साथ लेकर मत चलिए। इसको कहते हैं विवेक और वैराग्य। ध्यान की प्रक्रिया मनुष्य को इसी प्रकार की मानसिकता प्रदान करती है।

ध्यान के अभ्यास के लिए एक-दो घण्टे आवश्यक नहीं हैं। अगर आप एक घण्टे भी ध्यान करें और उसका विश्लेषण करें तो पायेंगे कि उस एक घण्टे में आपका वास्तव में ध्यान मात्र पाँच या दस मिनट का ही रहा होगा। बाकी समय अपने विचारों के साथ कुश्ती होती रहती है। अचानक ख्याल आता है, 'हम तो रसोई के बारे में सोच रहे हैं!' फिर मन को पकड़कर लाते हैं, 'नहीं, जप-ध्यान करना है।' एक मिनट के बाद मन भाग गया समुन्दर पार। चाचाजी अमेरिका में रहते हैं, तो उनके बारे में सोचने लगे कि अगली छुट्टियों में उनसे मिलने जायेंगे। फिर मन को पकड़कर लाते हैं। दो घण्टे में से एक घण्टा पचास मिनट अपने ही साथ कुश्ती होती है और वास्तव में दस मिनट का ध्यान। इसीलिये कहा जाता है कि अगर ध्यान करना है, तो एकाग्रचित्त होकर करो, ताकि कम समय में उसका अधिकतम लाभ मिल सके। ध्यान के लिये जिन दस मिनटों का चुनाव करते हैं, उस समय यह बात याद रखना कि तेईस घण्टे पचास मिनट संसार के लिये और दस मिनट अपने लिये। उन दस मिनटों में और कुछ नहीं, केवल पूर्ण एकाग्रता। तन्मय होकर अपनी साधना की और फिर बाहर आ गये। अगर ऐसा हो सकता है, तो वह वास्तविक ध्यान होगा।

गीता में जिस अभ्यास योग की चर्चा की गयी है, उसके आधार हैं विवेक और वैराग्य। लेकिन विवेक और वैराग्य को अपने जीवन में स्थान देने के लिये ध्यान का भी अभ्यास सम्मिलित करना आवश्यक है। ध्यान से हमें यह क्षमता प्राप्त होती है कि हम परिस्थितियों से अपने आप को अलग रखकर, उनका साक्षी बनकर, उनसे शिक्षा ग्रहण कर तनावमुक्त रहते हुए आगे बढ़ते जाएँ।

योगमयी अनुभूतियाँ

8 से 14 फरवरी 2025 तक गंगा दर्शन में संचालित सम्पूर्ण स्वास्थ्य योग कैप्सूल प्रशिक्षण के प्रतिभागियों के कुछ अनुभव यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं –

बिहार योग विद्यालय में यह मेरा प्रथम आगमन था। इससे पहले मैं योग अभ्यास दूरदर्शन, यू-ट्यूब इत्यादि के माध्यम से देख-सीख कर पिछले पंद्रह वर्षों से करते आ रहा था। किन्तु संपूर्ण स्वास्थ्य योग कैप्सूल में प्रवेश के पश्चात् वास्तविक योग का अनुभव हुआ। योग के अभ्यासों को जीवन के वास्तविक मूल्यों के साथ समावेशित कर उसका संपूर्ण लाभ कैसे प्राप्त किया जाए, यह छः दिवसीय प्रशिक्षण में बहुत सुंदर ढंग से बतलाया गया और इसका जीवन में तुरंत लाभ भी दिखा। मैं आगे भी इसका नियमित पालन करूँगा और अपने दोनों बच्चों को भी इस योग प्रशिक्षण और आश्रम जीवन में भाग लेने एवं जीवन के वास्तविक मूल्यों को आत्मसात् करने हेतु आश्रम प्रवास के लिए भेजूँगा।

– संजय कुमार ओझा, वाराणसी

मैंने बिहार योग विद्यालय के बारे में बहुत कुछ सुना था, लेकिन यहाँ आने के बाद जो अनुभव किया शायद वह किसी के बताने और सुनाने से ज्ञात नहीं होता। आश्रम को मैंने संपूर्ण स्वास्थ्य योग कैप्सूल के द्वारा जाना, जिसमें मैं सम्मिलित हुई। जैसा कि नाम से ज्ञात होता है, यह प्रशिक्षण संपूर्ण योग से जुड़ा है। पहले मैं योग का मतलब सिर्फ आसन समझ रही थी, लेकिन यहाँ आने के बाद ज्ञात हुआ कि योग सिर्फ आसन नहीं है, योग में मन की अहम भूमिका होती है। यहाँ आकर एक नये माहौल का अनुभव किया। मेरी सामान्य दिनचर्या से बिल्कुल भिन्न होते हुए भी मैं इस परिवेश में ऐसे समाहित हो गई कि पता ही नहीं चला कब आठ दिन बीत गये। अभी तक के जीवन काल के सबसे अद्भुत पल जो मैंने बिताये वे गंगा दर्शन में हैं। यहाँ आकर मेरे सोचने के तरीके से लेकर आध्यात्मिक दृष्टिकोण तक में बहुत अच्छा बदलाव हुआ है जो मेरे आने वाले जीवन काल में बहुत सकारात्मक प्रभाव डालेगा। यहाँ के सभी संन्यासियों से मिलकर जो ज्ञान प्राप्त हुआ शायद ही वह कहीं और मिल पाये।

– भार्गवी, भागलपुर

बिहार योग विद्यालय में संपूर्ण स्वास्थ्य योग कैप्सूल में भाग लेकर व्यक्तिगत जीवन में संयम-अनुशासन तथा स्वास्थ्य रक्षा के लिये योगाभ्यास सीखे। हठयोग तथा राजयोग के अभ्यास से शारीरिक स्फूर्ति तथा मानसिक शांति प्राप्त हुई। सत्र समाप्ति पर योग के माध्यम से सोने के समान दमकता हुआ महसूस कर रहा हूँ। सत्संग से जीवन में निर्णय लेने की क्षमता, विवेक का इस्तेमाल तथा मन को स्थिर रखने में बहुत सहायता प्राप्त होगी। बिहार योग विद्यालय अनंत समुद्र की तरह है, जिससे मुझे हमेशा ही अनेक मोती प्राप्त हुए। मैं बहुत ही प्रसन्न और स्वस्थ अनुभव करते हुए पुन: आश्रम आने का संकल्प करता हूँ।

– लालकृष्ण, देवघर

गंगा दर्शन आने से पहले यहाँ के बारे में मुझे ज़्यादा जानकारी नहीं थी, यहाँ आने के लिये मुझे मेरे भाई ने राय दी जो मेरे जीवनकाल का सबसे महत्त्वपूर्ण और अद्भुत पल था। यहाँ आने पर मुझे योग, अध्यात्म, आश्रम की व्यवस्थित दिनचर्या और अन्य कई चीज़ों की जानकारी मिली। आश्रम में मेरा अनुभव बहुत ही अच्छा रहा। यहाँ योग अभ्यास के बारे में बहुत गहराई से जानकारी दी गयी। यहाँ आने पर एक अलग ही वातवरण का अनुभव हुआ जो शायद कहीं और नहीं मिल पाता। यहाँ सभी संन्यासियों से मिलकर जो अनुभव हुआ है उसे मैं अपने जीवन काल में हमेशा पालन करूँगी। मैंने अपने आप में इन आठ दिनों में जो परिवर्तन देखा है, वह बहुत अद्भुत है। मैं अपने आप को योग और अध्यात्म से जुड़ा हुआ महसूस कर रही हूँ।

– प्राची, भागलपुर

आश्रम में प्रवेश के साथ ही सुखद अनुभूति का अहसास हुआ। सकारत्मकता की अनुभूति हुई, प्रकृति के करीब होने का अहसास हुआ। पूरा सत्र बहुत ही लाभकारी रहा। प्रथम दिन से ही तन और मन हल्का होता गया। ऐसा लगा कि अब मैं पूरी तरह स्वस्थ हूँ। जल नेति क्रिया विशेष रूप से लाभप्रद रही। पुन: आश्रम में आने के संकल्प के साथ विदा लेती हूँ।

– कुमारी शोभा, पटना

त्याग और वैराग्य

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

एक बात याद रखो कि कुछ भी तुम्हारा नहीं है। जब तुम दुनिया को अपना समझ कर चलते हो, सम्पत्ति या घर-परिवार को अपना समझ कर चलते हो, बेटा, बेटी, औरत, पति, घर, जमीन, जायदाद, सब अपना मानते हो तब तुम अपने को एक सीमा में बाँध देते हो। और जब तुम कहते हो कि यह सब मेरा नहीं है, पत्नी मेरी नहीं है, बेटा मेरा नहीं है, पैसा मेरा नहीं है, मेरे पास आ गया, मैं रखता हूँ मगर मेरा नहीं है, जब मनुष्य अपनी सारी सम्पत्ति, ज्ञान और भावना को अमानत समझता है, तब उसका ख्याल भगवान पर जाता है। इस बात को याद रखो कि जब पानी बहकर तालाब में जाता है तो कुछ दिन के बाद वह सूख जाता है, सड़ जाता है, क्योंकि वह सीमित है। मगर जब नदी का पानी बहता है, तो बहते ही रहता है। न सूखता है, न सड़ता है।

हमने अपने जीवन में जो कुछ भी प्राप्त किया उसका अपने लिए उपयोग नहीं किया। अब मनुष्य शरीर है तो रात को छत चाहिये, छत हो गयी। पहले कम उम्र थी तो दो बार खाते थे, अब उम्र ज्यादा है तो एक बार खाते हैं। इसके

अलावा बाकी जितनी भी चीजें हैं, सब किसी दूसरे के लिए हैं। चाहे योग का प्रचार करना हो, चाहे अस्पताल बनाना हो, चाहे अनाथालय बनाना हो, चाहे कोई अन्य काम हो। हमने राजकोट के पास एक ट्रस्ट खोल दिया और कहा कि चलाओ इसको, क्या फर्क पड़ता है? ऑस्ट्रेलिया में फार्म हाउस ले लिया, मकान बना दिया, समिति बना दी, आश्रम खुल गये, हर आश्रम की अपनी सम्पत्ति है, प्रिंटिंग प्रेस है, गोशालाएँ हैं। मगर हमको उस सब से क्या मतलब?

कहने का तात्पर्य यह कि दुनिया में प्राप्ति का रहस्य है त्याग। तुम अगर छाया को पकड़ने चलो तो छाया आगे ही भागेगी और तुम पीछे रह जाओगे। क्यों? क्योंकि तुमने सूर्य को पीछे रखा है। जब प्रकाश पीछे रहता है तो छाया आगे रहती है, और जब सूर्य आगे रहता है तो छाया पीछे रहती है। तब तुम जहाँ-जहाँ जाओ, वह तुम्हारे पीछे भागेगी। तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं है। पर सभी लोग छाया के पीछे-पीछे भाग रहे हैं, मेरा बेटा, मेरी बेटी, मेरी बीवी, मेरा घर। सब लोग अपने को लिमिटेड कम्पनी बना देते हैं और बेचारे उसी में फँसे रहते हैं। हजार कमाते हैं तो हजार खर्च हो जाता है, लाख कमाते हैं तो लाख खर्च हो जाता है, दस लाख कमाते हैं तो भी खर्च हो जाता है, कुछ बचता नहीं है। न लखपति का पैसा बचता है, न करोड़पति का। और हम तो दस-दस रुपये जोड़कर सेवा का काम करते गए।

हमारे गुरुजी कहते थे, 'देखो, अगर तुम्हें सरल रास्ता अपनाना है तो वह है छोड़ना। और कठिन रास्ता अपनाना है तो वह है जोड़ना। जोड़ने में बहुत मेहनत लगती है, छोड़ने में मेहनत नहीं है।' आखिर घर छोड़ने में कितनी मेहनत लगती है? झट से लंगोटी उठायी और चल दिये। जबकि जोड़ने में बहुत देर लगती है, आदमी बूढ़ा हो जाता है, दाँत टूट जाते हैं। हमारे गुरुजी ने कहा कि तुमको सरल चीज चाहिये तो छोड़ो, और कठिन चीज चाहिये तो जोड़ो।

सन् 1963 में हम त्र्यम्बकेश्वर गये। हमारे इष्टदेव त्र्यम्बकेश्वर महादेव हैं, नासिक के पास। 1963 में जब हमारा मुंगेर जाने का इरादा हुआ, तब पहले हम वहीं गए थे। हमने उनसे एक प्रार्थना की और एक वचन भी दिया। हमने कहा कि 20 साल योग का प्रचार करेंगे। आप हमारी पूरी मदद करो और उसके बाद हम सब छोड़कर आ जायेंगे। फिर हम उससे कोई मतलब नहीं रखेंगे। अब कोई बड़ा-सा भवन बनाए और भगवान से कहे कि बनाने में मदद करो, बाद में मैं छोड़कर आऊँगा, तो तुम इसे पागलपन समझोगे न! फिर भवन बना ही क्यों रहे हो?

लेकिन हमने भगवान को ऐसा ही वचन दिया। 1963 में वचन दिया, 1983 में छोड़ दिया। पक्का बीस साल। हमें छोड़ने में कोई दिक्कत नहीं है, हम यह जगह भी दस मिनट में छोड़ सकते हैं। हमें अपनी उम्र का ख्याल नहीं है, हम इस उम्र में भी रात को दो-तीन बार नहाते हैं, एक बार खाकर जी सकते हैं, रात को 12 बजे उठ सकते हैं, निर्वस्त्र रह सकते हैं। लेकिन जब तक हम यहाँ बैठे हैं तो आलसी की तरह नहीं बैठेंगे, कुछ-न-कुछ करेंगे जो दूसरों के काम आए। भगवान ने हमसे कहा है कि जब तक तुम ममता में नहीं पड़ोगे, मोहमाया में नहीं पड़ोगे तब तक तुम्हें कोई कुछ नहीं कर सकता। पर जिस दिन हम समझेंगे कि यह सम्पत्ति हमारी है, हम इसका मजा लें, उस दिन हम भी कमजोर पड़ जायेंगे, जैसे सब लोग कमजोर पड़ जाते हैं।

आध्यात्मिक यात्रा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

अध्यात्म शब्द की परिभाषा आत्मा या स्वयं के समीप आने के रूप में की गई है। यह एक अच्छा विचार है, लेकिन वास्तव में आप उस चीज के करीब कैसे जा सकते हैं जो आपके लिए अज्ञात है? यदि आप किसी चीज के बारे में जानते हैं तो उसके करीब जाने की आकांक्षा कर सकते हैं। क्या आपने आत्मा को देखा है? अगर नहीं देखा है तो आप उसे खोजने के लिए किस दिशा में जाएँगे? ऊपर, नीचे, बाएँ, दाएँ, आगे, पीछे – आप कहाँ जाएँगे? आत्मा का क्षेत्र अज्ञात है। आप कह सकते हैं कि आत्मा आपके भीतर है या यह सर्वव्यापी है, लेकिन ये केवल दार्शनिक सिद्धांत हैं।

यदि आप इन सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप से लागू करते हैं तो आप पायेंगे कि आत्मा या परमात्मा का अनुभव करने से संबंधित सभी आध्यात्मिक शिक्षाओं का आधार सद्गुण यानि सत्त्व से युक्त गुण हैं। जो सत्त्वगुण-संपन्न है, वह उस आत्मा को जानने में सक्षम है, और जो रजोगुणी या तमोगुणी है उसे अधिक लम्बी यात्रा तय करनी पड़ती है।

अगर मुंगेर से दिल्ली तक की आपकी यात्रा में चार स्टेशन हैं, तो पहला स्टेशन तमोगुण है। इस बिंदु से आपको एक लंबा रास्ता तय करना है – यात्रा में पूरी रात बाकी है। दूसरा स्टेशन रजोगुण है। अब आपने आधी यात्रा पूरी कर ली है, लेकिन आधी दूरी अभी भी बाकी है। तीसरा स्टेशन सत्त्वगुण है। यह दर्शाता है कि अंतिम स्टेशन जहाँ आप उतरेंगे, अब दूर नहीं है।

इस दृष्टिकोण से ये तीन गुण जीवन के तीन पड़ाव हैं, जिनसे आपको अपनी यात्रा में गुजरना है। आपके गंतव्य के सबसे निकट का स्टेशन सत्त्व गुण है। हालाँकि, जब आप अपने अंतिम स्टेशन पर पहुँचकर ट्रेन से उतरते हैं, तब भी आपकी यात्रा समाप्त नहीं होती। आपकी ट्रेन दिल्ली पहुँचने पर आनंद विहार टर्मिनल पर रुक सकती है, फिर भी आपको घर पहुँचने के लिए और प्रयास करना होगा, चाहे आप टैक्सी लें, रिक्शा लें या फिर पैदल ही चलें। उसी तरह मानव यात्रा आत्मा के अनुभव के साथ समाप्त नहीं होती। यह 'आनंद विहार' हो सकता है, आनंद का उद्यान, फिर भी आप घर नहीं पहुँचे हैं। यह केवल ट्रेन की यात्रा है जो समाप्त हो गई है।

सत्त्वगुण की अवस्था क्या है? यह ऐसी अवस्था है जिसमें आप सबसे श्रेष्ठ, सकारात्मक, शुभ और शुद्ध तत्त्वों से जुड़े होते हैं। इसलिए, सकारात्मक गुणों के विकास की प्रक्रिया जो आपको सत्त्वगुण की ओर ले जाती है, वही वास्तविक अध्यात्म है। आपको हमेशा याद रखना चाहिए कि तमोगुण से सत्त्वगुण की ओर जाना ही आध्यात्मिक यात्रा है। ऐसा मत सोचिए कि यह जीवात्मा और परमात्मा का मिलन है। वह तो एक दार्शनिक विचार है। व्यावहारिक स्तर पर व्यक्ति तमोगुण से सत्त्वगुण की ओर यात्रा कर सकता है। समय के साथ जब व्यक्ति सद्गुणों से संपन्न हो जाता है तो आंतरिक कठोरता और कलुषता विलीन हो जाती है, जिससे दिव्यता एवं उज्ज्वलता का स्वाभाविक और सहज अनुभव होता है।

संस्कार

संस्कार क्या है? लोग कहते हैं कि यह व्यक्ति का स्वभाव, व्यवहार और अभिव्यक्ति है। इस गूढ़ अवधारणा को इन सरल-से शब्दों में समझाना कुछ वैसा ही हुआ जैसे लोगों से पूछें कि आम का पेड़ कैसे होता है और वे आम के पेड़ की ओर इशारा करके कहें, 'देखो, यह आम का पेड़ है।' ठीक है, पेड़ वह है जो दिखता है, लेकिन इसका मूल कारण क्या है? बीज। उसी तरह, जीवन में आपकी अभिव्यक्तियों के बीज किसी समय आपके मन में बोए गए थे। इन्हें संस्कार कहते हैं। संस्कार वह बीज है जिसे आप अपने मन की जमीन में बोते हैं। जब सही समय आता है तो यह जमीन से उगता है। जब यह बड़ा होकर पेड़ बन जाता है तब आप कहते हैं, 'देखो, यह आम का पेड़ है।' लेकिन जब तक वह बीज मन के गर्भ में छिपा रहता है तब तक वह प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता।

अध्यात्म संस्कार का तात्पर्य सकारात्मक गुणों के बीज बोने से है। ये बीज स्वर्ग से नहीं टपकते, इन्हें मन में बोना पड़ता है, और फिर वे मन में धीरे-धीरे उगते हैं। स्वर्ग से भगवान की कृपा आप पर बरस सकती है, लेकिन सद्गुण नहीं बरसते, उन्हें अपने भीतर विकसित करना पड़ता है।

साधना

साधना का अर्थ है प्रयास करते रहना। आपने बिहार के एक व्यक्ति के बारे में सुना होगा जिसने अपने गाँव तक सड़क बनाने के लिए अकेले ही पहाड़ तोड़ डाला। इसे पूरा करने में उसे बाईस साल लग गए और उसे किसी की

मदद नहीं मिली। इतने सालों तक वह हर दिन अपनी छेनी-हथौड़ी लेकर जाता और अपने लक्ष्य को पाने के लिए अथक परिश्रम करता। किसी ने भी उसका साथ नहीं दिया, न उसके परिवार ने, न सरकार ने, न ही गाँव के लोगों ने। बहुत सालों बाद सरकार से उसे मान्यता और सम्मान मिला, और इस उपलब्धि का खूब प्रचार हुआ।

मूल बात यह है कि एक व्यक्ति ने पहाड़ को काटकर सड़क बनाने के लिए अकेले ही अथक प्रयास किया। उसने बारम्बार पुरुषार्थ किया और अंत में सफल हो गया। यह कोई सामान्य काम नहीं, यह साधना है। उसका एक लक्ष्य, एक उद्देश्य था – 'मुझे यह सड़क बनानी है, चाहे यह काम अकेले ही क्यों न करना पड़े।' सरल शब्दों में साधना का यही अर्थ है, निरंतर प्रयास।

अध्यात्म, संस्कार और साधना, इन तीनों शब्दों को जोड़ें तो इनका तात्पर्य अपने जीवन में सकारात्मक और अच्छे गुणों को प्राप्त करने के लिए बीज बोने और उनकी रक्षा के लिए निरंतर प्रयास करने से है। जब आप जमीन में बीज बोते हैं तो लम्बे समय तक आपको उसकी देखभाल करनी होती है। आपको उसे पानी और पोषण देना होता है, यह सुनिश्चित करना होता है कि उसे कोई जानवर नष्ट न कर दे। तब वह अंकुरित होकर एक छोटा पौधा बनेगा। अगर आप उसका पोषण करते रहेंगे तो वह फूलों और फलों से लदा एक बड़ा पेड़ बन जाएगा और सभी को लाभ पहुँचाएगा। बीज बोना संस्कार है। उसकी देखभाल और रक्षा करना साधना है। जब वह बड़ा होकर फूल, फल और सुगंध पैदा करता है, तो वह साधना की सिद्धि है। आध्यात्मिकता का अनुभव तब होता है जब आप स्वादिष्ट फलों का स्वाद लेते हैं।

अध्यात्म संस्कार साधना का यह पूरा क्रम महर्षि पतंजलि के एक सूत्र में देखा जा सकता है – *सा तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः।* साधना का पहला लक्षण है कि इसे लंबे समय तक करना और दूसरा लक्षण है नियमित रूप से करना – दीर्घकाल और नैरन्तर्य, जैसे उस व्यक्ति ने बाईस वर्षों तक पहाड़ खोदा। वह बीच में ही छोड़ सकता था, यह सोचकर कि 'मैं यह अकेले कैसे कर सकता हूँ!' लेकिन उसने ऐसा नहीं किया, वह दीर्घकाल तक निरन्तर लगे रहा। साधना की तीसरी आवश्यकता है कि आपको विश्वास से युक्त होना चाहिए, साधना के प्रति सत्कार का भाव होना चाहिए – सत्कारासेवित। इस प्रक्रिया के माध्यम से एक दृढ़ आधार स्थापित होता है – दृढभूमि। आपके आध्यात्मिक जीवन में दृढ़ता और स्थिरता आती है। यह सब मिलकर अध्यात्म संस्कार साधना है।

मन को बदलना

अध्यात्म संस्कार का पहला पहलू आपके मन की स्थिति, व्यवहार और रचनात्मक अभिव्यक्ति में बदलाव लाना है। इसके लिए यौगिक परम्परा में दो विधियों का उल्लेख किया गया है – यम और नियम।

यम और नियम की शिक्षा सन् 2013 में आयोजित विश्व योग सम्मेलन के बाद से ही दी जा रही है। उससे पहले योग की शिक्षा आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और षट्कर्म तक ही सीमित थी। इन पाँच अभ्यासों को सभी शिक्षक और संन्यासी सिखाते थे, चाहे वे भारत में हों या दुनिया में कहीं और।

इतने सालों से लोग मानते आए हैं कि यम और नियम योग के नैतिक सिद्धांत हैं। वे कहते, 'हम सिर्फ अच्छे स्वास्थ्य के लिए आसन-प्राणायाम का अभ्यास करना चाहते हैं। हमें यम-नियम की जरूरत नहीं।' इसलिए योग के शारीरिक पहलुओं पर ही जोर दिया जाता था। इस प्रकार, पिछले पचास सालों में योग का जो प्रचार-प्रसार हुआ वह संपूर्ण योग विद्या का नहीं था। हर किसी को दी जाने वाली आम एस्पिरिन की गोली ही पूरी दुनिया में दी गई। अगर आप कोई विशेष उपचार चाहते हैं, तो आपको अलग स्तर पर आना होगा।

विश्व योग सम्मेलन में यह घोषणा की गई कि योग का पहला अध्याय समाप्त हो गया है और अब हम दूसरे अध्याय में प्रवेश कर रहे हैं, जिसमें योग की विद्या को समझने पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा। इस दिशा में विकसित किये जाना वाला पहला पक्ष, यम और नियम का है।

लोग सोचते हैं कि केवल महर्षि पतंजलि ने ही यम और नियम के बारे में कहा है। यम-नियम की चर्चा करते समय सभी सत्य, अहिंसा आदि का उल्लेख करते हैं, परन्तु हठयोग के यम-नियमों के बारे में कोई नहीं जानता, क्योंकि किसी का ध्यान वहाँ नहीं जाता। बुद्धिजीवी भी केवल वही दोहराते हैं जो पहले कहा और लिखा जा चुका है। लोग यह नहीं जानते कि प्राथमिक विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक योग की प्रत्येक कक्षा के लिए अलग-अलग यम और नियम परिभाषित किए गए हैं जो उस योग के अनुरूप हैं। महर्षि पतंजलि ने जिन यम-नियमों की बात की है वे राजयोग पर लागू होते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि वे हठयोग, क्रियायोग और कुंडलिनी-योग पर भी लागू होते हैं। राजयोग का पाठ्यक्रम राजयोग तक ही सीमित है, हठयोग का पाठ्यक्रम हठयोग तक ही सीमित है, और क्रियायोग का पाठ्यक्रम क्रियायोग तक ही सीमित है। योग की प्रत्येक शाखा की एक निर्धारित विचारधारा, प्रणाली, विधि और सिद्धांत है।

यदि योग की हर शाखा में यम-नियमों का उल्लेख किया जा रहा है तो इसके पीछे क्या कारण है? वे उस योग का लक्ष्य और प्रयोजन स्थापित करते हैं। यदि आप राजयोग के पाँच यमों पर विचार करें – सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, ब्रह्मचर्य – तो आप पायेंगे कि राजयोग में इन पाँच अवस्थाओं को प्राप्त करना आवश्यक है। जब आप इन पाँचों में उत्तीर्ण हो जाते हैं तब आप राजयोग से आगे बढ़ सकते हैं। आप इन्हें एक ही कक्षा में पाँच अलग-अलग परीक्षाओं के रूप में देख सकते हैं। राजयोग की कक्षा में आपको सत्य का अध्ययन एवं अभ्यास करना है और उसमें उत्तीर्ण होना है, आपको अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय और ब्रह्मचर्य का अध्ययन-अभ्यास करना है और उनमें उत्तीर्ण होना है। यम और नियम आपके जीवन में उस कक्षा की उत्तीर्णता और पूर्णता को दर्शाते हैं।

आसन, प्राणायाम या षट्कर्म जैसे शारीरिक अभ्यास करते समय भी अगर आप इन यम-नियमों को ध्यान में रखें और अपने अभ्यासों को उनके अनुसार समायोजित करें, तो आप योग मार्ग पर आगे बढ़ेंगे। ये व्यवहार तब आपके जीवन का एक स्वाभाविक अंग बन जायेंगे।

योग के दूसरे अध्याय में उन यम-नियमों को जानने और समझने का प्रयास किया जाता है जो आपकी जीवनशैली का हिस्सा बन सकते हैं। इसलिए आपको वे यम-नियम नहीं मिलेंगे जिनकी चर्चा योग सूत्रों में की

जाती है। साथ ही हम यह भी समझने की कोशिश करते हैं कि इन सद्गुणों को व्यक्तिगत क्षमता के अनुसार जीवन में धीरे-धीरे कैसे अपनाया जा सकता है, और दार्शनिक विचार रहने के बजाय आपके स्वभाव और व्यवहार का हिस्सा कैसे बनाया जा सकता है। यही इसका उद्देश्य है। अब इन प्रारम्भिक यम-नियमों पर चर्चा करते हैं।

मनःप्रसाद और जप

मन:प्रसाद का मतलब है प्रसन्नता और जप का तात्पर्य मन को मंत्र में तल्लीन कर देने से है। यम के रूप में प्रसन्नता का अभ्यास करने के लिए आत्म-अवलोकन की आवश्यकता होती है। अपने आप से पूछिये कि दिन में कितने घंटे या मिनट आप खुश रहते हैं और कितने समय दु:खी। आप पायेंगे कि चौबीस घंटों में आपको शायद केवल एक-आध घंटे की वास्तविक खुशी का अनुभव होता है। बाकी समय आप सोचते रहते हैं, 'मुझे यह समस्या है, मुझे यह तनाव है। ऐसा क्यों नहीं हो रहा है? वह व्यक्ति मुझसे इस तरह कैसे बात कर सकता है?' आप खुश नहीं हैं।

प्रसन्नता वह कवच है जो दु:खों और कष्टों से रक्षा करता है। अगर आप यह कवच पहनेंगे तो कभी भी दु:ख-दर्द का अनुभव नहीं होगा। प्रसन्नता आपके मन को सकारात्मक बनाने का पहला कदम है। किसी भी समय नकारात्मकता में फिसल जाना आसान है और अपनी सकारात्मकता को बनाए रखना एक साधना है। वह साधना मनःप्रसाद की है।

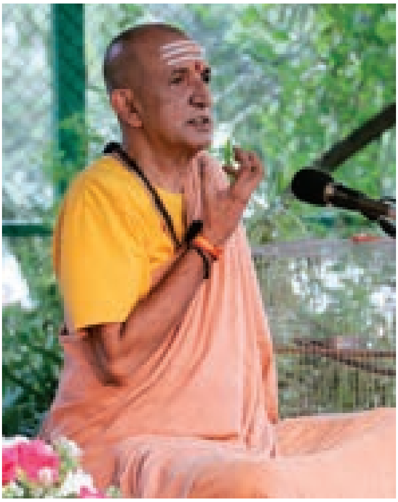

जप संसार से विलग होने की क्षमता विकसित करने का नियम है। चौबीस घंटे आप दुनिया से जुड़े रहते हैं। रात को सोते समय भी आप अपनी समस्याओं के बारे में सोचते रहते हैं। सुबह उठते ही आप दिनभर की समस्याओं का सामना करने के लिए खुद को तैयार कर लेते हैं। आप हर समय खुद को समस्याओं से घिरा हुआ पाते हैं और आप संसार से या

इससे मिलने वाले मनोवैज्ञानिक तनाव से स्वयं को अलग नहीं कर पाते। यह संबंध-विच्छेद मंत्र जप से हो सकता है। मंत्र जप करते समय दस मिनट के लिए आप खुद को और अपनी समस्याओं को भूल सकते हैं, तथा अपने इष्ट या गुरु के बारे में सोच सकते हैं। दस मिनट के लिए आप संसार से अलग हो सकते हैं, और दिन के चौबीस घंटों में से ये दस मिनट आपको शांति प्रदान करेंगे।

बहुत-से लोग कहते हैं कि मंत्र जप करने से अच्छा लगता है। यह भावना मंत्र से नहीं, बल्कि संसार से नाता तोड़ने के कारण आती है। मंत्र केवल नाता तोड़ने का माध्यम बनता है। जब आप उन वस्तुओं से नाता तोड़ पाते हैं जो उत्तेजना और तनाव का कारण बनती हैं, तब आपको शांति का अनुभव होता है। मंत्र ने शांति नहीं दी, मंत्र ने केवल एक तनावपूर्ण स्थिति में विराम दिया। शांति का अनुभव उस विराम के बाद स्वत: हुआ।

क्षमा और नमस्कार

यम-नियम का दूसरा समूह है क्षमा और नमस्कार। क्षमा का तात्पर्य अपने प्रतिक्रियात्मक स्वभाव को नियंत्रण में रखने से है। जिसका अपने मन पर नियंत्रण नहीं है, वह किसी को क्षमा नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसा व्यक्ति हमेशा परेशान, विक्षिप्त, विचलित और आत्मघाती रहता है।

नमस्कार विनम्रता का सूचक है। जब आप किसी को देखते हैं तो कम-से-कम मुस्कुराना और अभिवादन करना चाहिए। नमस्कार केवल किसी के सामने हाथ जोड़ना नहीं है, इसका मतलब है दूसरे को स्वीकार करना, उसे देखकर मुस्कुराना है। जब आप किसी का खुशी के साथ अभिवादन करते हैं, तो आत्मीयता और एकता की जो भावना पैदा होती है, वह नमस्कार है।

दांति और इंद्रिय-निग्रह

यह तीसरा युगल है। दांति मानसिक संयम है और इंद्रिय-निग्रह इंद्रियों का संयम। उदाहरण के लिए, आप रात में कहीं जा रहे हैं और सड़क पर एक रस्सी पड़ी है। आपको लगता है कि यह साँप है। उस समय आपका मन और इंद्रियाँ दोनों प्रतिक्रिया करते हैं। मन कहता है, 'यह एक साँप है!' और इंद्रियाँ तुरंत दूर हटने के लिए क्रियान्वित होती हैं। मन और इंद्रियाँ, दोनों बहुत उत्तेजित हो जाते हैं। अब यदि आप मन और इंद्रियों को अलग कर देते हैं तो कैसी प्रतिक्रिया होगी? यदि मन शांत है, पर इंद्रियाँ उत्तेजित, तो क्या प्रतिक्रिया होगी? या

इंद्रियाँ शांत हैं, लेकिन मन उत्तेजित है, तब क्या प्रतिक्रिया होगी? वे एक-दूसरे को नियंत्रित करेंगे। मन इंद्रियों से कहेगा, 'तुम ऊपर-नीचे क्यों उछल रहे हो? सब ठीक है, शांत हो जाओ।' इसे ही दांति और इंद्रिय-निग्रह कहा जाता है।

आपको दोनों के लिए अलग-अलग प्रयास करने की जरूरत नहीं है। अपनी सामान्य प्रतिक्रियाओं में यदि आप एक को नियंत्रित करने का प्रयास करते हैं, तो दूसरा अपने आप नियंत्रित हो जाएगा। यदि मन को पता है कि 'यह रस्सी है, साँप नहीं', तो इंद्रियाँ स्वाभाविक रूप से शांत हो जाएँगी। यदि इंद्रियाँ गर्मी का अनुभव कर रही हैं और आप ठंडे कमरे में चले जाते हैं, तो इंद्रियाँ आराम का अनुभव करेंगी और मन भी विश्रान्त हो जाएगा। इस तरह, ये एक-दूसरे का परस्पर समर्थन करते हैं।

अद्वेष और मैत्री

लोगों के बीच अलगाव और दूरी द्वेष के कारण होती है। उस द्वेष को भंग कर और अद्वेष की स्थिति में आकर, आप अलगाव और उससे उत्पन्न भावनाओं को विलीन कर देते हैं। आप अब यह नहीं सोचते कि 'यह व्यक्ति मेरा दुश्मन है। मुझे वह व्यक्ति पसंद नहीं है। मुझे उसका व्यवहार पसंद नहीं। फलाना व्यक्ति बदमाश है।'

द्वेष में दूसरों के बारे में राय और पूर्वाग्रह होते हैं, अद्वेष में कोई राय या पूर्वाग्रह नहीं होता। द्वेष की अवस्था में लोग आपके बेटे को देखेंगे और कहेंगे, 'वह बदमाश है।' अदेष की स्थिति में माँ कहेगी, 'वह बदमाश हो सकता है, लेकिन वह मेरा बेटा है और मैं उससे प्यार करती हूँ।' भावना बदल जाती है। जब आप किसी को बदमाश समझते हैं तो दुश्मनी की भावना होती है। जब आप उन्हें अपना समझते हैं, तो दुश्मनी नहीं, एकता की भावना होती है। जब एकता की भावना का अनुभव होता है, तब आप दोषों को नहीं देखते, बल्कि आप दूसरों को उनकी समस्याओं से बाहर निकालने की कोशिश करते हैं।

मैत्री का तात्पर्य मित्रता की भावना से है। यह मन की ऐसी स्थिति है जहाँ आप सभी के साथ मित्रता का संबंध स्थापित करते हैं, जिसमें सकारात्मकता और पवित्रता होती है, और जो दूसरे व्यक्ति को आगे बढ़ने में मदद करती है।

ये यौगिक जीवनशैली के पहले चार यम-नियम हैं जिन्हें आत्मसात् करके हम अपने जीवन में आध्यात्मिक संस्कारों को रोपित और पोषित कर सकते हैं।

– 24 जून 2017, गंगा दर्शन, मुंगेर

त्याग, भोग और योग

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

यशोधरा का त्याग बुद्ध के त्याग से श्रेष्ठ है। उसकी तपस्या पूर्णतः निष्काम रही। बुद्ध की साधना चर्या का एक उद्देश्य था। वह अनन्तपथ पर चली, चलती गई, वे चले और निर्वाण पाते ही ठहर गये। बुद्धचर्या की भूमिका में विकल्प रहे, विचित्रताएँ और भ्रम और अपूर्णता रहीं। यशोधरा की तपस्या सनातन प्रकृति की गंभीरता का पार्थिव छटा थी, जो जीवन का नियम है।

बुद्ध ने घर छोड़ा, वह घर पर ही रही। उन्होंने त्याग द्वारा निर्वाण पाया। उसने न त्याग किया न निर्वाण की अपेक्षा की, स्त्री की सर्वश्रेष्ठ तपस्या यही है, क्योंकि उसमें चिरसन्तोष जो है।

पुरुष तो स्वभाव से असन्तोषी और विक्षिप्त विकारों का पिटारा है। उसकी कल्पना, साधना, कर्मठता और ईश्वर की भावना असंतोष की सतत् संसरणशील भूमि पर परिवर्तन को प्राप्त होती रहती हैं। बुद्ध चर्या भी कुछ ऐसी ही थी। स्त्री सनातन स्थिरता है, युगों के परिवर्तनों को चुनौती देती आई है। निर्निमेष उसने अपने आराध्य को सृष्टि के शैशव में ही पहचान लिया। वह उस धारणा पर अचल रही, आज भी उसकी आराधना वही है, जो सृष्टि स्फुरण के समय थी।

यशोधरा त्याग और भोग के संघर्षों में सच या झूठ मानने वालों को चुनौती देती रही। अन्यथा वह भी उरुबेला में सघन जालों में फँसी रहती या फिर कपिलवस्तु के वैभव में अपने को भुला देती। उसमें उस तपस्वी की धारणा थी, जो अपलक नेत्रों से अनन्त की वटी की ओर देखता रहता है – न सोचता है, न सोता है। अपना आराध्य अपने ही अन्दर तो है।

क्या बुद्ध ऐसा कर सके? क्या सचमुच किसी 'परम आनन्द' की खोज में बुद्धचर्या का अनुसरण करना सृष्टि के सनातन सिद्धान्तों के अनुरूप है?

अथवा यशोधरा को अपने अनन्त के विस्तार को 'त्याग', 'मोक्ष' और 'अहम्' की परिधि में ले जाना चाहिए?

सत्य तो यह है कि यशोधरा ने अनन्त बुद्धत्व को अपने में पाया और सिद्धार्थ मात्र गौतम रहे और सनातन साधना के पथ पर नहीं चल सके, खोजते रहे पर पा न सके। *'कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते'*।

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान SB Collect Online Donation Facility के माध्यम से इस **QR code** को स्कैन करके दिया जा सकता है।

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग**, **बिहार योग भारती**, **योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

योग चक्र 3 – ज्ञानयोग की सप्त भूमिकाएँ

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 74, ISBN: 978-93-48677-73-0

इन सत्संगों में स्वामीजी ने ज्ञानयोग की क्रमबद्ध प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए समझाया है कि किस प्रकार इसका दायरा आत्म-विचार की अमूर्त विधियों से कहीं अधिक है। शुभेच्छा से प्रारम्भ होकर तुर्यगा तक की ज्ञानयोग की सप्त-स्तरीय सीढ़ी, साधक की विवेक-बुद्धि को विकसित करने का मार्ग प्रशस्त करती है। इससे साधक मन की नकारात्मक अभिव्यक्तियों को सम्भालते हुए आंतरिक सकारात्मकता और पवित्रता अनुभव कर पाता है।

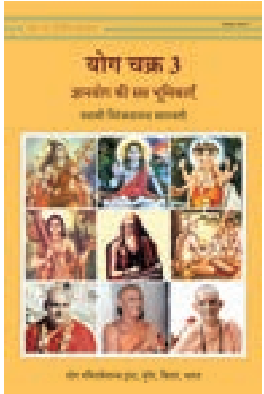

नया प्रकाशन

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 9162783904, 9835892831

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

BIHAR YOGA

www.biharyoga.net
बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद
बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिन्हें इस QR code को स्कैन करके देखा जा सकता है। ये *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना
स्वस्थ जीवन हेतु रचित यह कार्यक्रम *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/
योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2025

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

जनवरी–दिसम्बर	*आश्रम जीवन प्रशिक्षण*
सितम्बर 22–30	*राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 3–11	*हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण*
नवम्बर 1–15	*प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण*
नवम्बर 16–जनवरी 30 2026	*संन्यास अनुभव (राष्ट्रीय/अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

नवम्बर 1–दिसम्बर 31	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)*

कार्यक्रम

जून 23–जुलाई 9	*वेद पारायण*

मासिक कार्यक्रम

प्रत्येक शनिवार	*महामृत्युंजय हवन*
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	*गुरु भक्ति योग*
प्रत्येक 12 तारीख	*अखण्ड रामचरितमानस पाठ*

अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए तथा योगविद्या पत्रिका को ऑनलाइन देखने के लिए बिहार योग की वेबसाइट – biharyoga.net पर जायें या बगल के QR code को स्कैन करें